Chapter-8

अष्टम् अध्याय

गोविन्द गिल्ला भाई की काव्य कला

प्राक्कथन

गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व के अध्ययन की आधार भूत साम्ग्री तथा उनके काव्य का अध्ययन, विषय की दृष्टि से पूर्व अध्याय में किया जा चुका है, अत: अब प्रस्तुत अध्याय में उनके काव्य का अध्ययन विन्यास की दृष्टि से किया रहा है, जिससे अंत में उनके समूचे कवित्व का मूल्यांकन किया जा सके। जैसे चित्रकार अपनी कला को रंगादि के माध्यम से अभिव्यक्त करता है उसी प्रकार कवि भाषा के माध्यम से अपनी कला को रूप प्रदान करता है, जिसे यहाँ विन्यास शब्द से अभिहित किया गया है। इस विन्यास की निर्मिति या निष्पत्ति में अनेक स्वरूपात्मक इकाइयों एवं स्तरों की परिकल्पना की जा सकती है, परंतु प्रस्तुत अध्ययन की सीमा में न यह संभव है और न वांछित। अत: आलोचकों द्वारा मान्य काव्य विन्यास की निम्नलिखित दो इकाइयों के आधार पर गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य विन्यास का अध्ययन किया जा रहा है :

१- काव्य रूप

२- काव्य शिल्प -

- २।१ छंद योजना
- २।२ अलंकार योजना
- २।३ भाषा प्रयोग
- २।४ शैली

३- उपसंहार

अत: उक्त क्रम में ही प्रस्तुत अध्याय में गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य विन्यास या काव्य कला का अध्ययन किया जा रहा है।

काव्य रूप

काव्य रूप अपने आप में समीक्षा शास्त्र का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है तथा हिन्दी समीक्षा शास्त्र के लिए विशेष रूप से एक समस्या भी है। क्योंकि हिन्दी के समीक्षकों ने संस्कृत तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के साहित्य समीक्षकों के समान हिन्दी साहित्य को ही दृष्टि में रख कर अभी उसके काव्य-रूपों की विवेचना नहीं की।[१] प्राचीन हिन्दी के काव्य-रूप संस्कृत तथा आधुनिक हिन्दी के काव्य-रूप अंग्रेजी से कुछ प्रभावित अवश्य हैं, परन्तु उन्हें केवल संस्कृत अथवा अंग्रेजी काव्य-रूप नहीं माना जा सकता क्योंकि हिन्दी काव्य-रूपों की कुछ अपनी स्वकीय विशेषताएं भी हैं। प्राचीन हिन्दी के काव्य-रूपों के विषय में यह अधिक सत्य है क्योंकि वे संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत अपभ्रंश के काव्य रूपों के अधिक निकट हैं।[२] एक प्रकार से प्राचीन हिन्दी काव्य-रूपों को अपभ्रंश काव्य रूपों का विकसित रूप भी कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में संस्कृत काव्य शास्त्र के नियमों के आधार पर हिन्दी के काव्य रूपों के स्वरूप आदि की विवेचना युक्तिसंगत नहीं कही जा सकती, विशेषत: जबकि अपभ्रंश का स्वतंत्र काव्य-शास्त्र ही न लिखा गया हो। आशय यह कि हिन्दी के समीक्षकों को हिन्दी काव्य रूपों की ऐतिहासिक तथा स्वरूपात्मक व्याख्या बिलकुल नये सिरे से करनी है।[३] परन्तु प्रस्तुत अध्ययन की परिसीमा में इस प्रकार का कोई प्रयास न संभव है और न ही आवश्यक, क्योंकि गोविन्द गिल्ला भाई के काव्यों में वह स्वरूपात्मक अन्विति नहीं मिलती - जैसाकि आगे के अध्ययन से स्पष्ट होगा - जिसके कारण कोई काव्य रूप निष्पन्न होता हो। अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि गोविन्द गिल्ल भाई का सम्पूर्ण कवित्व केवल पद्यात्मक साहित्य तक ही सीमित है। अर्थात् उनका समग्र काव्य पद्यबद्ध है। सैद्धान्तिक रूप से किसी

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश में साहित्य रूप का विवेचन, पृ० ८४८ से ८५१।

२- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास - डा० शम्भुनाथ सिंह, पृ० ५६।

३- तुलनीय है : साहित्य शास्त्र - डा० रामकुमार वर्मा।

भी साहित्य के पद्यबद्ध काव्य रूप को प्रबन्ध और मुक्तक की दो मूलभूत कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, हां विभिन्न परंपराओं आदि के अनुसार विभिन्न साहित्यों के प्रबन्ध और मुक्तक पद्यबद्ध काव्य रूप स्वरूपात्मक दृष्टि से भिन्न हो सकते हैं।

गोविन्द गिल्ला भाई की काव्य-कृतियों के परिचय के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'प्रवीण सागर' नामक प्रबन्ध-काव्य के जिस अंश की पूर्ति उन्होंने की थी उसे छोड़ कर शेष सभी कृतियां मुक्तक ही हैं। अत: मुक्तक-काव्य-रूप के विषय में संक्षिप्त विचार कर उनकी काव्य-कृतियों के काव्य रूप के विषय में विचार किया जा सकता है।

मुक्तक शब्द की व्युत्पत्ति विद्वानों ने 'मुक्त' शब्द में 'कन्' प्रत्यय लगने से मानी है, जिस का अर्थ बताया है जो अन्य से अनालिंगित हो।[1] आशय यह कि मुक्तक वह है जिसका अस्तित्व किसी अन्य पर निर्भर न हो। संस्कृत के अनेक आचार्यों ने मुक्तक की परिभाषाएं दी हैं।[2] परन्तु इन परिभाषाओं के अनुसार तो कोई भी स्वतंत्र छंदों का संग्रह मुक्तक-काव्य-रूप कहला सकता है, जो सैद्धांतिक दृष्टि से तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। कारण, किसी काव्य रूप में यदि कोई अंतरवर्ती अन्विति न हो तो वह काव्यरूप कैसे कहा जा सकता है, और कैसे उसे सामान्य काव्य संग्रहों से भिन्न सिद्ध किया जा सकता है। आचार्य दंडी ने मुक्तक के विषय में लिखते हुए कहा है कि 'मुक्तकं कुलकं कोश: संघात: इति तादृश:'[3] इसे मुक्तक की परिभाषा न मान कर यदि मुक्तक और उस जैसे काव्य रूपों का विवरण मान लिया जाय तो इससे कुछ संकेत मिल सकता है। आशय यह कि मुक्तक काव्य रूप वह काव्य रूप है जो स्वतंत्र छंदों द्वारा किसी भाव, विषय या किसी स्वरूपात्मक सिद्धान्त के आधार पर निष्पन्न होता है। सामान्यत: प्रबन्ध काव्यों में कथानक,

---

१- तुलनीय है : ध्वन्यालोक की लोचन टीका ३।७ ।

२- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ५६५ ।

३- काव्यादर्श - आचार्य दंडी १।१३ ।

या नायक आदि पूरे प्रबन्ध को एकसूत्रता प्रदान करते हैं, परन्तु उनका प्रत्येक छंद अपने आप में स्वतंत्र नहीं होता, वरन् पूर्वापर संबंध से आबद्ध रहता है। यदि किसी प्रबन्ध का प्रत्येक छंद अपने आप में स्वतंत्र रह कर भी पूरे प्रबन्ध का अंग बना रहे तो उस प्रबन्ध को 'मुक्तक - प्रबन्ध' कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ सूरदास का 'सूरसागर' एक ऐसा ही मुक्तक प्रबन्ध कहा जा सकता है। सूरदास के सूर सागर में एकसूत्रता प्रभु-लीला-वर्णन के द्वारा आती है, जबकि अन्य मुक्तक काव्य रूपों में यह एकसूत्रता किसी एक विषय, भाव, अभिव्यंजना भंगिमा आदि के द्वारा भी सिद्ध हो सकती है। प्राचीन साहित्य में इस प्रकार के अनेक ग्रंथ मिलते हैं जिनके आयोजन के मूल में उक्त प्रकार से एकसूत्रता दृष्टिगोचर होती है। आशय यह कि मुक्तक-काव्य-रूप की लघुतम इकाई यद्यपि अपने आप में स्वतंत्र होती है, परन्तु ये सब स्वतंत्र इकाइयाँ आपस में मिल कर ही उसे निष्पन्न करती हैं।

यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि संस्कृत तथा हिन्दी में सामान्यत: मुक्तक काव्य कृतियों का आयोजन छंद, अलंकार और संख्या आदि के आधार पर ही किया गया है, जिन्हें उन मुक्तक काव्यों के काव्य रूपों के प्रमुख स्वरूपाधायक तत्व के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है। इस प्रकार के स्थूल स्वरूपाधायक तत्वों से भिन्न अधिक सूक्ष्म तथा सुन्दर स्वरूपाधायक तत्व भी संभव हो सकते हैं तथा उनके आधार पर भी मुक्तक काव्य रूप सिद्ध हो सकते हैं। साथ ही प्राचीन और आधुनिक कुछ मुक्तक काव्यों के रूपों में इस प्रकार के स्वरूपाधायक तत्व खोजे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ जयशंकर प्रसाद कृत 'आँसू' इसी प्रकार का सुन्दर मुक्तक काव्य रूप का उदाहरण माना जा सकता है, जिसके मूल में यौवन, प्रेम और वेदना जैसे सूक्ष्म तत्व मुक्तक काव्य रूप के स्वरूपाधायक तत्व के रूप में मिलते हैं।

संस्कृत के आचार्यों ने मुक्तक काव्य का वर्गीकरण कई प्रकार से किया है, दंडी ने मुक्तक के 'कुलक' 'कोश' और 'संघात' नामों का उल्लेख मात्र किया है[१] जबकि

१- काव्यादर्श - आचार्य दंडी १।१३ ।

जबकि ध्वन्यालोक में उसके मुक्तक, सन्दानितक, विशेषक, कलापक, कुलक और पर्याय बन्ध नाम लिये गये हैं[१]। हेमचन्द्र ने ध्वन्यालोक के प्रथम पाँच भेदों के साथ साथ कोश, प्रघट्टक विकीर्णक और संघात नामक भेदों का उल्लेख किया है[२], जबकि विश्वनाथ ने मुक्तक, युग्मक, सन्दानितक, कलापक, कोश और वृज्या को अनिबद्ध काव्य कहा है[३]। राजशेखर को छोड़ कर जिन्होंने विषय के अनुसार मुक्तकों के भेद किये हैं[४], अन्य आचार्यों द्वारा किये गये भेद सामान्यत: संख्या या रचनाकार को दृष्टि में रख कर किये गये हैं[५]। हिन्दी के विद्वानों ने भी मुक्तकों का विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण किया है[६]। आशय यह कि विद्वानों ने मुक्तकों को विषय, छंद, छंद संख्या, राग, रचनाकार आदि के अनुसार विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है परन्तु संख्या उनके वर्गीकरण की सर्वाधिक प्रमुख आधार कही जा सकती है[७]।

मुक्तकों का उक्त संख्यामूलक वर्गीकरण जितना अधिक सामान्य है उतना ही प्रचलित और प्राचीन भी है। आशय यह कि मुक्तक रचनाओं को उनके छंदों की संख्या के आधार पर ही उनके मूल में वर्तमान अथवा संभावित अन्य किसी प्रकार की अन्विति या एकसूत्रता की सर्वांशेण या अल्पांशेण उपेक्षा के साथ, मुक्तक काव्य रूप की विभिन्न कोटियों में बाँटना, स्वरूपात्मक होते हुए भी अत्यन्त स्थूल एवं सामान्य ही कहा जायेगा परन्तु इस प्रकार का वर्गीकरण न केवल आचार्यों में, वरन् कवियों में भी अधिक प्रचलित है परिणाम स्वरूप पंचक, अष्टक, दशक, शतक आदि नाम वाले अनेकानेक मुक्तक काव्य-रचना ग्रंथ मिलते हैं। इतना ही नहीं इसकी परम्परा का मूल स्रोत वैदिक साहित्य में भी मिल जाता है, जो भारतीय साहित्य

१- ध्वन्यालोक - आनन्दवर्धनाचार्य ३।७ ।

२- काव्यानुशासनम् - हेमचंद्राचार्य ८।१० ।

३- साहित्य दर्पण - विश्वनाथ ६।३१४।३१५

४- तुलनीय है : काव्य मीमांसा - राजशेखर अध्याय ६ ।

५- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ५६६ ।

६- ,, : वही, पृ० ५६७ और हिन्दी मुक्तक का विकास - जितेन्द्रनाथ पाठक, पृ०२०

७- ,, ,, वही, पृ० १७ ।

का ही नहीं विश्व साहित्य का भी आदिम रूप माना जाता है[१]। ऋग्वेद संहिता के मंडलात्मक वर्गीकरण के अतिरिक्त एक अष्टकात्मक वर्गीकरण भी मिलता है, जो कुछ विद्वानों द्वारा मंडलात्मक वर्गीकरण से अधिक प्राचीन भी माना गया है[२]। इसी प्रकार अथर्ववेद के कुछ कांडों में समान संख्या वाले सूक्तों को ही संगृहीत किया है और उन्हीं के अनुसार उन्हें विभिन्न कांडों में आयोजित किया गया है। उदाहरणार्थ प्रथम कांड में चार मंत्र वाले, द्वितीय कांड में पाँच मंत्र वाले, तृतीय कांड में छ मंत्र वाले सूक्त संगृहीत मिलते हैं[३]। इस प्रकार पाली के त्रिपिटक साहित्य के अनेक ग्रंथों में संख्यामूलक वर्गीकरण या संपादन दृष्टिगोचर होता है।

आशय यह कि संस्कृत के आचार्यों ने मुक्तक का जो संख्यामूलक वर्गीकरण प्रधान रूप से किया है उसका ऐतिहासिक आधार अवश्य है, परन्तु संस्कृत के मुक्तकों का वर्गीकरण हिन्दी के मुक्तकों पर लागू नहीं होता। क्योंकि सर्वप्रथम तो संस्कृत में ही जितने प्रकार के मुक्तक प्रचलित थे उन सबका उल्लेख संस्कृत के आचार्यों ने नहीं किया[४]। दूसरे, जो मुक्तक संस्कृत के साथ साथ हिन्दी में भी मिलते हैं उनमें भी कुछ न कुछ अन्तर मिलता है। उदाहरणार्थ संस्कृत और हिन्दी में संख्यामूलक मुक्तक समान रूप से मिलते हैं परन्तु हिन्दी में जितने अधिक भेद संख्यामूलक मुक्तकों के मिलते हैं उतने संस्कृत में नहीं मिलते। आशय यह कि संस्कृत के कुछ मुक्तक-प्रकार हिन्दी ने यथारूप स्वीकार किये, कुछ भेद के साथ स्वीकार किये, कुछ नवीन मुक्तक-प्रकार विकसित किये और कुछ संस्कृत के अतिरिक्त, प्राकृत आदि प्राचीन भारतीय भाषाओं से, और कुछ फारसी आदि विदेशी भाषाओं से तथा कुछ लोक साहित्य से ग्रहण कर विकसित किये[५]। आशय यह कि हिन्दी में अनेक प्रकार के मुक्तक-काव्य-रूप[६] विकसित हुए हैं, जिनके लिए विविध नाम प्राचीन साहित्य में मिलते हैं तथा

१- हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर -एम०विन्टरनित्स,प्रथम भाग ,आमुख,पृ० १ ।

२- वही, पृ० ४६ ।

३- वही, पृ० १०५ ।

४- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ५६६ ।

५- वही, पृ० ५६६ ।

६- तुलनीय है : प्राचीन भाषा काव्यों की विविध संज्ञाएं, नागरीप्रचारिणी सभा पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ४, सं० २०१०, पृ० ४१६ ।

जिनका वर्गीकरण आधुनिक विद्वानों ने विविध प्रकार से किया है।[1] परन्तु यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जितने प्राचीन काल में मुक्तक काव्यों के नाम प्रचलित मिलते हैं उन सब को मुक्तक-काव्य-रूप नहीं माना जा सकता , क्योंकि किसी भी काव्य रूप के लिए अपेक्षित आन्तरिक अन्विति या एकसूत्रता उनमें नहीं मिलती, परिणाम स्वरूप वे मुक्तक-काव्य-रूप न होकर केवल स्वरूप हीन संग्रह मात्र ही रह जाते हैं। विद्वानों का ऐसा अभिमत है[2] कि ऐसे नामों को काव्यरूप न मान कर 'काव्य संज्ञा' ही मानना चाहिए।

गोविन्द गिल्ला भाई की नामावली से ही स्पष्ट हो जाता है कि उनमें से अधिकांश संख्यामूलक हैं। राधा मुख षोडशी, विष्णु विनय पच्चीसी, परब्रह्म पच्चीसी, प्रबोध पच्चीसी, प्रेम पच्चीसी, पयोधर पच्चीसी , प्रबोध बत्तीसी, प्रारब्ध पचासा और गोविन्द ज्ञान बावनी इनकी ऐसी रचनाएं हैं जिनमें कृति का स्वरूपात्मक आधार संख्या ही हैं। इनके अतिरिक्त गोविन्द हजारा नामक कृति इनकी और है जिसमें अपने छंदों के साथ साथ अन्य कवियों के छंद भी संगृहीत हैं। इसी प्रकार पावस पयोनिधि नामक रचना की चारो तरंगों का नाम भी उन तरंगों में आये हुए छंदों की संख्या के अनुसार ही दिया गया है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई को अपनी रचनाओं के लिए संख्या मूलक नाम ही अधिक प्रिय थे। इनका यह संख्या-प्रेम इनकी वैज्ञानिक वृत्ति के साथ साथ इनकी सृजनात्मक प्रतिभा की स्वरूपदा शक्ति के अभाव का द्योतक माना जा सकता है। इनकी उक्त संख्यामूलक रचनाओं में संख्या के अतिरिक्त अन्य किसी अन्विति या स्वरूपाधायक एकसूत्रता का अभाव इसी बात का प्रमाण कहा जा सकता है। हिन्दी में जो संख्यामूलक रचनाएं - जैसे 'शतक' 'सतसई' आदि - मिलती हैं उनमें सामान्यत: छंद संख्या सौ, सात सौ आदि से अधिक ही मिलती हैं। परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं में यह बात नहीं मिलती। उनकी रचनाओं

१- हिन्दी मुक्तकों का विकास - जितेन्द्र नाथ पाठक, पृ० २०।

२- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ५६७।

में सर्वत्र एक ही छंद अधिक मिलता है जिसमें कवि ने प्राय: आत्म-परिचय तथा कृति के रचना काल का उल्लेख किया है। इस प्रकार अंतिम छंद कृति का अंग न होकर कृति के परिचय का अंग ही कवि को मान्य प्रतीत होता है। इन सभी रचनाओं के शीर्षकों के विषय में भी एक ही सामान्य बात मिलती है कि सभी रचनाओं के शीर्षकों के पूर्वार्ध में विषय तथा उत्तरार्ध में संख्या का उल्लेख किया गया है। हिन्दी में संख्यामूलक कृतियों के शीर्षकों के पूर्वार्ध में कभी कभी कवि, उसके आश्रय दाता या अन्य किसी का नाम भी मिल जाता है, परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई के 'गोविन्द हजारा' तथा 'गोविन्द ज्ञान बावनी' के अतिरिक्त अन्यत्र किसी रचना के शीर्षक में न कवि का नाम मिलता है और न किसी अन्य का। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई के अनुसार उनकी रचनाओं के शीर्षक उनकी रचनाओं के विवरण भी हैं, जिसमें उन्होंने रचना के विषय और उसकी छंद संख्या दोनों को स्पष्टत: अभिव्यक्त कर दिया है।

इन रचनाओं के अध्ययन से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि इन रचनाओं में सर्वत्र दो बातें ऐसी समान रूप से मिलती हैं जिनको इन रचनाओं के काव्य रूपों के मूल में वर्तमान अन्विति या स्वरूपाधायक एकसूत्रता कहा जा सकता है। प्रथम है: विषय की एकता, और द्वितीय है छंदों की निश्चित संख्या। सामान्यत: हिन्दी में प्राप्त संख्यामूलक मुक्तक रचनाओं के काव्य रूपों के मूल में यही दो तत्व प्राप्त होते हैं जिन्हें उनके मूल में वर्तमान अन्विति या स्वरूपाधायक एकसूत्रता के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है। गोविन्द गिल्ला भाई ने हिन्दी के कवियों की सामान्य परम्परा का अनुगमन यहां भी किया है जैसा कि उन्होंने अन्यत्र किया है।

यहां यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि रीतिकालीन कवियों ने उतने संख्यामूलक मुक्तक-काव्य नहीं लिखे, जितने गुजरात के हिन्दी कवियों ने लिखे हैं,[१] विशेषकर गुजरात के जैन कवियों ने। गुजरात के हिन्दी कवियों ने बीसी, बाईसी,

---

१- देखिए परिशिष्ट : द्वितीय अ।

पच्चीसी, बत्तीसी, पचासा, और बावनी जैसी लघु संख्यामूलक अनेक रचनाएं की हैं। उनमें से बावनी तो अत्यधिक लोकप्रिय काव्य रूप सिद्ध हुआ है । भुज के एक मंत्री महाशय ने तो बावनी के विकास के लिए एक पुरस्कार घोषित किया था जो उत्तम बावनी लिखने वाले कवि को दिया जाता था[१] । गुजरात के जैन कवियों ने इतनी अधिक बावनियां लिखी हैं कि गुजरात में बावनी परम्परा के विकास का श्रेय गुजरात के हिन्दी के जैन कवियों को दिया जाता है । जैन कवियों की बावनियों में कुछ ऐसी नवीनताएं तथा विशेषताएं मिलती हैं जिनके कारण बावनी एक स्वतंत्र मुक्तक-काव्य-रूप सिद्ध की जा सकती है । जैन कवियों की सभी बावनियों में ये विशेषताएं समान रूप से मिलती भी हैं। अत: निश्चित रूप से गुजरात के हिन्दी कवियों की काव्य कृतियों में बावनी का एक विशिष्ट स्थान तथा महत्व माना जा सकता है । परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई की 'गोविन्द-ज्ञान बावनी' जैन कवियों की बावनियों से अंशत: ही मिलती है । उदाहरणार्थ जैन कवियों की बावनियों का प्रधान विषय वैराग्य और रस, शान्त रस ही प्रारम्भ से मिलता है, जो गोविन्द गिल्ला भाई की बावनी में भी मिल जाता है । परन्तु जैन कवियों की बावनियों में बावनियों के समान बावन छंद तो मिलते ही हैं परन्तु उनमें छंदों का आयोजन 'ओम् नमो सिद्धम्' तथा तत्पश्चात् वर्णमाला के वर्णों के क्रम में किया जाता है। परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई की बावनी में जैन कवियों की बावनियों की यह विशेषता नहीं मिलती । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ने गुजरात के जैन कवियों की परम्परा का अनुसरण न कर हिन्दी के हिन्दी भाषी कवियों की परम्परा का ही अनुगमन किया है ।

१- इस सूचना के लिए आचार्य श्री कुंवर चंद्र प्रकाश सिंह, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बड़ौदा विश्व विद्यालय, के प्रति विशेष रूप से आभारी हूं, जिन्हें इस विषय की सामग्री कच्छ की शोध यात्राओं में प्राप्त हुई थी ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई की संख्यामूलक कृतियों में एक विषयता तथा सुनिश्चित संख्या ये दो ऐसी विशेषताएं हैं जो उनकी सभी कृतियों में समान रूप से मिलती हैं तथा उनके काव्य रूपों के विधायक तत्व मानी जा सकती हैं। क्योंकि अन्य विशेषताओं के अभाव में भी उक्त दो विशेषताएं उनके काव्य रूपों को एक प्रकार की सुनिश्चितता प्रदान कर उनके काव्य रूपों को निखार प्रदान करती हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि काव्य संज्ञाएं - छंद, शैली, संख्या या विषय के आधार पर प्रचलित होती हैं और उन्हीं में से जिनका रूप निश्चित हो जाता है उसकी स्वरूपगत पद्धतियों का समान कड़ाई से पालन करने पर उन्हें काव्य रूप कहा जाता है।[१] मुक्तक काव्य रूप की इस परिभाषा के अनुसार तो गोविन्द गिल्ला भाई की उक्त सभी काव्य-कृतियां षोडशी, पच्चीसी, बत्तीसी, पचासा और बावनी नामक संख्यामूलक मुक्तक काव्य रूप की परंपरा-सम्मत उदाहरण मानी जा सकती हैं। परन्तु मुक्तक काव्य रूप विषयक उक्त धारणा अधिक तर्क संगत प्रतीत नहीं होती। क्योंकि जब तक विषय और विन्यास में कोई तर्क संगत संबंध में न हो तब तक इस धारणा के अनुसार कोई भी रचना - जिसमें एक विषय के कुछ छंद संगृहीत कर दिये हों - वह एक विशिष्ट काव्य रूप हो सकती है, यदि उस रचना को परम्परा का अनुमोदन प्राप्त हो। परन्तु जब तक उस रचना के मूल में किसी प्रकार का विषय और विन्यास का परस्पर तर्क संगत संबंध सिद्ध न हो, तब तक उस रचना के रचना-प्रकार और उसके नाम को कोई विशिष्ट काव्य-रूप नहीं माना जा सकता। संस्कृत में अष्टक लिखने की परंपरा मिलती है उसमें विषय और विन्यास का एक परम्परा प्राप्त और समाज स्वीकृत संबद्ध भी मिलता है। आशय यह कि अष्टक में निश्चित रूप से आठ ही छंद होते हैं और निश्चित रूप से ही उसका विषय ईश्वर वंदना या मंगल भाव से संबंधित मिलता है। परम्परा इतनी अधिक प्राचीन है कि आज अष्टक नाम ही किसी मंगलाष्टक या गंगाष्टक जैसे किसी वंदनात्मक अष्टक के भाव के लिए पर्याप्त है। आशय यह कि अष्टक लिखने की परम्परा की प्राचीनता के कारण, समाज

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ५६७।

द्वारा एक सांस्कृतिक सत्य के रूप में स्वीकृत होने के कारण, तथा विषय एवं विन्यास के परस्पर इस संबंध को हिन्दी के कवियों द्वारा सामान्य रूप से स्वीकृत किये जाने के कारण, अष्टक को एक सुनिश्चित मुक्तक काव्य रूप माना जा सकता है। परन्तु क्योंकि हर प्रकार की संख्यामूलक काव्य कृति के विषय में यह सत्य नहीं है। अत: हर प्रकार की संख्यामूलक काव्य-कृति ए मुक्तक-काव्य-रूप नहीं कही जा सकती। गोविन्द गिल्ला भाई की गोविन्द ज्ञान बावनी ही एक ऐसी रचना है जो अष्टक के समान ही गुजरात के हिन्दी कवियों द्वारा सिद्ध बावनी काव्य रूप के अंतर्गत आती है। क्योंकि गुजरात के कवियों के लिए बावनी किन्हीं भी या किसी भी विषय के बावन छंदों के संग्रह का नाम नहीं है, अपितु वह शान्त रस में वैराग्य मूलक विषय पर अथवा किसी विशेष करुणाजनक अवसर पर, बावन एक जैसे छंदों में लिखी गयी एक विशेष प्रकार की काव्य-रचना है। अत: वह एक काव्य संज्ञा नहीं परन्तु काव्य रूप के समान कही जा सकती है। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने गुजरात के हिन्दी कवियों की बावनी परम्परा का आंशिक रूप से पालन ही किया है। अत: गोविन्द ज्ञान बावनी को अंशत: बावनी काव्य-रूप माना जा सकता है। इस रचना में बावनियों की प्राय: सभी विशेषताएं मिलती हैं अत: इस रचना को काव्य-रूप की दृष्टि से सफल भी कहा जा सकता है।

गोविन्द गिल्ला भाई की अन्य संख्यामूलक रचनाओं के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। उन रचनाओं में एक-विषयता तथा निश्चित छंद संख्या ये दो ही बातें हैं जो हिन्दी की इसी प्रकार की संख्यामूलक रचनाओं में प्राय: प्राप्त होती हैं। अत: यदि इन दो विशेषताओं के आधार पर ही हिन्दी की इस प्रकार की संख्या मूलक काव्य कृतियों की संज्ञाओं को उनके काव्य-रूप की संज्ञा माना जा सकता है तो गोविन्द गिल्ला भाई की शेष संख्यामूलक रचनाओं की संज्ञाओं को भी काव्य-रूप माना जा सकता है और कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने 'षोडशी 'पच्चीसी', बत्तीसी', 'पचासा', 'बावनी' और 'हजारा' नामक संख्यामूलक काव्य रूपों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। संख्यामूलक काव्य कृतियों के अतिरिक्त गोविन्द गिल्ला भाई की जो अन्य काव्य कृतियां हैं उनमें विषय की एकता के अतिरिक्त और कोई ऐसी विशेषता नहीं मिलती जिसे काव्य-रूप में अपेक्षित उस

काव्य के सभी अंगों में व्याप्त एक अन्विति या स्वरूपाधायक एकसूत्रता के रूप में स्वीकृत किया जा सके । आशय यह कि 'शिखनख चंद्रिका', 'राधा रूप मंजरी', 'विवेक विलास', 'षट् ऋतु वर्णन', 'पावस पयोनिधि' आदि रचनाओं में एक विषयता के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसी विशेषता नहीं है जो उनके स्वरूप की विशेषता कही जा सके । इन रचनाओं की संज्ञाएं इनके नाम ही हैं या इनके विवरणात्मक शीर्षक, उन्हें काव्य-रूप संज्ञा नहीं कहा जा सकता । परन्तु इतना निश्चित है कि इन्हें प्रबन्ध-काव्य भी नहीं कहा जा सकता और क्योंकि ये प्रबन्ध काव्य नहीं हैं अत: मुक्तक - काव्य ही हैं । इस तर्क के अनुसार इन्हें मुक्तक-काव्य कहा जाय तो इन्हें मुक्तक-काव्य-संग्रह ही कहा जा सकता है, मुक्तक - काव्य-रूप नहीं ।

'शिखनख चंद्रिका', ''राधा रूप मंजरी' और 'षट्ऋतु वर्णन' नामक रचनाओं में परम्परा प्राप्त छंदों का क्रम प्राप्त होता है । शेष रचनाओं में जो छंदों का क्रम प्राप्त होता है उसके लिए परम्परा में कोई आधार नहीं खोजा जा सकता । आशय यह कि 'विवेक विलास' या 'छवि सरोजिनी' जैसी रचनाएं रीतिकालीन कवियों द्वारा लिखी अवश्य गयी हैं परन्तु उनके विषय या वर्णन क्रम आदि के विषय में कवियों में उस प्रकार की एकरूपता नहीं मिलती, जिस प्रकार की एकरूपता नखशिख-वर्णन या षट्ऋतु - वर्णन के ग्रंथों में प्राप्त होती है । गोविन्द गिल्ला भाई की इन रचनाओं के विषय में जो सत्य है वही रीतिकालीन अन्य कवियों की ऐसी काव्य कृतियों के विषय में भी सत्य है । तात्पर्य यह कि जैसे गोविन्द गिल्ला भाई की इन रचनाओं के विशिष्ट काव्य रूप सिद्ध करने के लिए कोई स्वरूपात्मक आधार प्राप्त नहीं होता । उसी प्रकार रीतिकालीन कवियों की इस प्रकार की रचनाओं के मूल में भी इस प्रकार के किसी आधार को नहीं खोजा जा सकता । अत: इन्हें मुक्तक काव्य संग्रह की सामान्य संज्ञा ही दी जा सकती है ।

गोविन्द गिल्ला भाई की इन रचनाओं को मुक्तक-संग्रह कहने का एक कारण यह भी माना जा सकता है कि इन रचनाओं के कवि द्वारा दिये गये नामों के स्थान पर और भी कोई नाम दिये जा सकते हैं तथा इन रचनाओं में

जितने छंद हैं उनसे अधिक या कम छंद भी किये जा सकते हैं तथा इन परिवर्तनों से इन रचनाओं के रूप में कोई मौलिक अंतर नहीं आ सकता । गोविन्द गिल्ला भाई ने स्वयं `विवेक विलास `में इस प्रकार के परिवर्तन किये हैं । आशय यह कि विषय की एकता के अतिरिक्त और कोई स्वरूपात्मक अन्विति या एकसूत्रता इन रचनाओं में नहीं मिलती, अत: इन रचनाओं में किसी प्रकार के कोई विशिष्ट काव्य-रूप की संभावना स्वीकृत नहीं की जा सकती । हां इन्हें काव्य-संग्रह अवश्य कहा जा सकता है जिसकी परम्परा हिन्दी में प्राचीन काल से मिलती है ।

गोविन्द गिल्ला भाई ने `प्रवीण सागर `नामक प्रबन्ध-काव्य की जो बारह लहरें लिखी हैं उनमें ही उनके प्रबन्धकार-रूप का थोड़ा बहुत परिचय मिल जाता है । यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रवीण सागर मुक्तक मूलक प्रबन्ध-काव्य ही है । आशय यह कि उद्धव शतक आदि के समान इस रचना के प्रत्येक छंद अपने आप में स्वतंत्र होते हुए भी प्रबन्ध काव्य के अंग हैं । गोविन्द गिल्ला भाई ने इस प्रबन्ध की रचना-शैली को अच्छी तरह समझा है , तथा उसी की शैली में उसकी पूर्ति की है । इसीलिए मूल `प्रवीण सागर `और पूर्त `प्रवीण सागर `की प्रबन्ध - शैली में कोई अन्तर दृष्टि गोचर नहीं होता । गोविन्द गिल्ला भाई ने इस प्रबन्ध की अन्य विशेषताओं का भी सफलतापूर्वक निर्वाह किया है । उदाहरणार्थ इस रचना में नायिका भेद, संगीत, वाद्य, अश्व-विद्या आदि का बीच बीच में शास्त्रीय विवेचन भी मिलता है[१] । गोविन्द गिल्ला भाई ने भी इस विशेषता को अपने लिखे अंश में भी बनाये रखा है, और प्रसंगानुसार उन्होंने भी दुख, भाग्य, भक्ति और योग की शास्त्रीय चर्चा अपनी लहरों में की है[२] । इसी प्रकार प्रवीण सागर की विविध छंदों के प्रयोग की विशेषता भी इनकी लहरों में मिल जाती है । आशय यह कि प्रवीण सागर प्रबन्ध की प्राय: सभी विशेषताओं को गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा लिखित अंश में देखा जा सकता है , जिन्हें इस बात का प्रमाण माना जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई

१- तुलनीय है : प्रवीण सागर, लहर : १८, २२, २४, २५ आदि ।

२- तुलनीय है : प्रवीण सागर ह०प्र०सं० २०२ लहर ७४, ७७, ८०,८१,८२ ।

ने इस प्रबन्ध की पूर्ति करने से उसकी सभी विशेषताओं को अच्छी तरह समझ लिया था, और इसीलिए वे उनका अपने अंश में सफलतापूर्वक निर्वाह कर सके।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई मुख्यत: मुक्तककार कवि ही हैं उन्होंने जिन मुक्तक-काव्य-रूपों का अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है, उनमें उन्हें रीति कालीन अन्य कवियों के समान आंशिक सफलता ही मिली है। रीतिकालीन हिन्दी कवियों ने अपनी रचनाओं में विशेष रूप से मुक्तकों को ही अपनाया है।[1] इसी प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई ने भी मुक्तक ही अधिक लिखे हैं।

काव्य-शिल्प

गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य-रूपों के अध्ययन के पश्चात् उनके काव्य-शिल्प के विषय में विचार किया जा सकता है। वैसे काव्य-शिल्प की व्यापक सीमा के अंतर्गत, काव्य-शिल्प की अंतिम परिणिति होने के कारण काव्य-रूप का अध्ययन किया जा सकता था, परन्तु जैसा कि पूर्व अध्ययन से स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई की काव्य रचनाएं काव्य-रूप की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं, अत: उनका काव्य-रूप की दृष्टि से अध्ययन पहले कर, संप्रति काव्य-शिल्प की अन्य स्वरूपात्मक इकाइयों की दृष्टि से उनका अध्ययन किया जा रहा है।

काव्य-शिल्प की परिभाषा और उसकी स्वरूपात्मक इकाइयों के विषय में विद्वानों में मतभेद हो सकता है परन्तु यहां उसके विवेचन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। अत: काव्य शिल्प के अंतर्गत निम्नलिखित इकाइयों को स्वीकार किया जा रहा है :

(१) छंद-प्रयोग
(२) अलंकार-प्रयोग
(३) भाषा-प्रयोग
(४) शैली

१- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २१५।

गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य-ग्रंथों को देखते हुए काव्य-शिल्प की उक्त चार कोटियां पर्याप्त तथा उचित कही जा सकती हैं। अत: आगे उनकी रचनाओं का अध्ययन उक्त चार दृष्टियों से किया जा सकता है।

छंद प्रयोग

विश्व की प्राय: सभी विकसित भाषाओं में छंद के प्रयोग और अप्रयोग के आधार पर दो प्रकार का साहित्य मिलता है जिनमें से एक को पद्य-साहित्य और दूसरे को गद्य-साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। प्राचीन काल में छंदोबद्ध या पद्य में सभी प्रकार का साहित्य मिलता था, परन्तु आधुनिक काल में उसका प्रयोग अत्यधिक सीमित होकर केवल काव्य के लिए ही होता है और वह भी विशेषकर कविता के लिए। आज कल गद्य में भी कविता करने का प्रयास कुछ कवियों ने किया है। अत: गद्य के इस प्रकार क्षेत्र विस्तार के कारण आधुनिक काल को गद्य-काल कहा जाय तो उचित ही है। परन्तु आज भी पद्य का प्रयोग समाप्त नहीं हुआ है, साथ ही प्राचीन काल के काव्य के अध्ययन के लिए ही नहीं अपितु समूचे साहित्य के अध्ययन के लिए पद्य का अध्ययन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। पद्य-काव्य एक विशिष्ट शैली में लिखे गये काव्य का नाम है, जबकि छंद उस पद्य-काव्य की लघुतम स्वतंत्र स्वरूपात्मक इकाई है। इसीलिए विद्वानों ने छंद की परिभाषा विशुद्ध स्वरूपात्मक दृष्टि से करते हुए लिखा है कि अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा गणना तथा यति-गति आदि से संबंधित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य-रचना छंद कहलाती है।[१] प्रत्येक भाषा अपनी प्रकृति के अनुसार अपने विशेष छंदों को विकसित कर लेती है। इस दृष्टि से छंद विशुद्ध भाषा-विज्ञान का विषय है। परन्तु भाषा-विज्ञान इसका अध्ययन नहीं करता, वरन् इसके अध्ययन के लिए एक स्वतंत्र विषय ही है जिसे छंद-शास्त्र कहा जाता है।

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २६० ।

भारतीय साहित्य में छंद-प्रयोग की बड़ी समृद्ध परम्परा मिलती है। इस परम्परा में कुछ ऐसे छंद हैं जो किसी विशेष काल में या किसी एक भाषा के साहित्य में ही अधिक प्रचलित मिलते हैं। परन्तु इन सभी कालों और साहित्यों के छंदों में कुछ मूलभूत समानताएं मिलती हैं, जिनके आधार पर अखिल भारतीय छंद-शास्त्र की परिकल्पना की जा सकती है।

संस्कृत साहित्य में जो स्थान अनुष्टुप का है, वही स्थान प्राकृत में गाथा[1] का है, तथा अपभ्रंश में दोहा और हिन्दी में कवित्त, सवैया का। रीतिकालीन हिन्दी-कवियों ने कवित्त, सवैया और दोहा का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है,[2] तथा इन्हीं छन्दों में उन्होंने अपना सारा कौशल प्रदर्शित किया है। रीतिकालीन कवियों के छंद-प्रयोगों में न तो आदिकालीन कवियों के समान विविधता मिलती है और न भक्तिकालीन और आधुनिक कवियों के समान छंद प्रयोग में प्रयोगात्मकता ही मिलती है। परन्तु इतना अवश्य है कि रीतिकालीन कवियों ने जिन छंदों का प्रयोग किया है, उन छंदों को ऐसा मार्जन कर दिया है कि वह उनकी एक महती उपलब्धि मानी जा सकती है। आशय यह कि हिन्दी के आदि काल में छंद-प्रयोगों में जो विविधता दृष्टिगोचर होती है वह भक्तिकाल में प्रयोगात्मकता की कसौटी पर निखर कर रीतिकाल में सुस्थिर और सुनिश्चित हो गयी थी। इसीलिए रीतिकाल के छंद प्रयोग में त्रुटिशून्य सौन्दर्य तो मिलता है परंतु व्याप्ति अधिक नहीं मिलती।

यहां यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि रीतिकाल की परिसीमा में जो गुजरात में हिन्दी के कवि हुए हैं उनके काव्यों में छंद-प्रयोग विविधतापूर्ण मिलता है। उदाहरणार्थ आदिकालीन हिन्दी काव्य में प्रयुक्त छंदों में से अनेक छंद ऐसे हैं जो भक्ति और रीतिकाल में प्रयुक्त नहीं मिलते। परन्तु चारणों की

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३४२।

२- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २१६।

परंपरा के कारण ये छंद गुजरात के कवियों द्वारा आज भी प्रयुक्त होते हैं। इस दृष्टि से चारणी काव्य-परंपरा के प्रमुख ग्रंथ 'प्रवीण सागर' का विशेष महत्व है। हिन्दी में केशवदास को ही एक ऐसा कवि माना जाता है जिसने अपने एक प्रबन्ध में सर्वाधिक छंदों का प्रयोग किया है[1]। परन्तु प्रवीण सागर में ११२ छंदों का प्रयोग मिलता है[2] जो केशवदास की रामचन्द्रिका के ७५ छंदों से ३७ छंद अधिक है। इसके अतिरिक्त गुजरात के कुछ कवियों ने गुजराती के कुछ विशिष्ट छंदों का भी हिन्दी में प्रयोग किया है। जैसे गुजराती की प्रसिद्ध गरबियों का प्रयोग दयाराम ने ब्रजभाषा में बड़ी सफलता के साथ किया है। इसी प्रकार अनेक संत-कवियों ने गुजरात में प्रचलित अनेक लोक धुनों के आधार पर नवीन छंदों की उद्भावना की है। उदाहरणार्थ संत-कवि अखा की रचनाओं में जकड़ी, फूलणा आदि के विशिष्ट प्रयोग देखे जा सकते हैं। इस दृष्टि से अखा की 'संत प्रिया' नामक रचना भी महत्वपूर्ण है। आशय यह कि गुजरात के हिन्दी कवियों की रचनाओं में छंद-प्रयोग विशिष्ट प्रकार का मिलता है, अत: उसका विशेष महत्व है।

परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई हिन्दी के रीति कवियों द्वारा विशेष रूप से प्रभावित थे। अत: उनकी रचनाओं में गुजरात के हिन्दी कवियों की परम्परा के अनुरूप वैविध्यपूर्ण छंद-प्रयोग के साथ साथ, कवित्त, सवैया और दोहा का ही सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं के छंद-प्रयोग में गुजरात के हिन्दी कवियों के छंद-प्रयोग की परम्परा सामान्य रूप से और रीतिकालीन हिन्दी कवियों के छंद-प्रयोग की परम्परा विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। गोविन्द गिल्ला भाई के छंद-प्रयोग का अध्ययन करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि पहले उनका विवरण प्रस्तुत किया जाय। अत: निम्नलिखित तालिका द्वारा उनके द्वारा प्रयुक्त सभी छंदों का उनकी रचनाओं के साथ विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है :-

---

१- केशव और उनका साहित्य - डा० विजयपाल सिंह, पृ० ३१७।

२- वही, पृ० ३१८।

तालिका छंद विवरण

छंद का नाम	कवित्त	सवैया	दोहा	छप्पय	कुंडलिया	पादाकुलक	चौपाई	तोटक	भुजंगी	सोरठा	मोदक	घत्ता	कुल
विष्णुविनय	२६												
परब्रह्मपच्ची	२६												
प्रबोधपच्ची	२६												
राधामुख	१७												
पयोधरपच्ची	२६												
गो०ज्ञा०बा०	२६												
प्रारब्धपचा	५३												
बोधबत्तीसी	३४												
विवेकविलास	३२५	१०२	२२	१४	१४								
शिखनखचंद्रिका	१२२	१४	१७	१									
राधारूपम०	८६	६	६	१									
नैनमंजरी	६६	४	२										
कविसरोजिनी	५६	७	४	२									
प्रेमपच्चीसी	२६		३										
पावसपयोनि०	११३	१२											
षट्ऋतुवर्णन	७७	६	८				४						
समस्या पू०प्र	१७१	५६	५										
यशचंद्रिका	६	१	२	२									
लच्छनबत्तीसी	३	४	२५	३									
भूषणमंजरी	६०	६	४७			४							
शृंगारषोडशी	२८	२	३४			३५							

छंद का नाम	कवित्त	सवैया	दोहा	छप्पय	कुंडलिया	पादाकुलक	चौपाई	तोटक	भुजंगी	सोरठा	मोदक	चरनाकुल
भक्तिकल्प०	३१		१०			२०		२				
वक्रोक्तिवि०	५१	१७	४८			१						
शृंगार सरो०	२३३	१७८	३६८			६		१				
श्लेष चंद्रि०	८६	९	९५									
रत्नावलीर०	७		४									
अन्योक्ति०	११०	८	२२									
अलंकार अं०	१०	७	४३									
शब्दविभू०	१०९	६६	१९८	७	१	२	१६	१	१	१	१	
प्रवीणसागर	६६	५०	२०६	४	२	१७६	६७	७४	५५	५		१७
	२१४३	५५८	११७२	४८	१७	२१४	८९	७६	५६	६	२	१७

उक्त छंदों के अतिरिक्त प्रवीण सागर में निम्नलिखित छंदों का प्रयोग मिलता है:-

गाहा	चौपाया	मोतीदाम	अलसा	त्रिभंगी	पद्धरी	हरिगीत	प्लवंग	स्रग्विणी	जेकरी
१२	९	७	६	५	५	४	२	१	१

इस तालिका से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई का छंदों-विधान केवल रीतिकालीन कवियों के छंदों-विधान की परम्परा तक ही सीमित नहीं है, बल्कि गुजरात की हिन्दी-काव्य-परम्परा ने भी उसे विस्तार प्रदान किया है। परन्तु इतना निश्चित है कि गुजरात की हिन्दी-काव्य-परंपरा का गोविन्द गिल्ला भाई के छंद-प्रयोग पर केवल प्रभाव ही माना जा सकता है। उसे उनके कवित्व की किसी प्रधान विशेषता के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता। कारण, छंदों के प्रयोग की विविधता केवल एक ही ग्रंथ 'प्रवीणसागर' तक सीमित है जिसके प्रबन्ध-काव्य होने, चारणी काव्य परम्परा का एक विशिष्ट ग्रंथ होने तथा गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा पूर्ति के लिए लिखे जाने के पूर्व ही विविध छंदों की शैली में लिखे होने के कारण ही उनको उसमें विविध छंदों का प्रयोग करना पड़ा होगा। अन्य रचनाओं में जैसे 'शब्द विभूषण' आदि में भी इन्होंने चारण परम्परा के छंदों का प्रयोग किया है, परन्तु ये सभी रचनाएं प्रवीण सागर की बारह लहरों के लिखे जाने के पश्चात की हैं, अतः इन रचनाओं के छंद-प्रयोग पर प्रवीण सागर के छंद प्रयोग का प्रभाव माना जा सकता है। प्रवीण सागर की बारह लहरों की रचना से पूर्व लिखी गयी रचनाओं में रीतिकालीन कवियों के प्रिय छंद कवित्त, सवैया, दोहा, आदि का ही प्रयोग किया गया है तथा प्रवीण सागर के पश्चात् लिखी गयी रचनाओं में भी इन्हीं छंदों का प्रयोग प्रधान रूप से मिलता है। इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि गोविंद गिल्ला भाई अपने छंद प्रयोग में भी रीतिकालीन कवियों की परम्परा में ही प्रधान रूप से आते हैं, हां उन पर गुजरात की चारणी काव्य परम्परा का प्रभाव अवश्य था। गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा प्रयुक्त छंदों की तुलना से भी यही सिद्ध होता है कि उन्होंने कवित्त, दोहा तथा सवैया का सर्वाधिक प्रयोग किया है, जो रीतिकालीन कवियों की परम्परा के प्रतिनिधि छंद हैं तथा गुजरात की चारणी काव्य परम्परा के प्रमुख छंदों में से पादाकुलक, चौपाई, तोटक, भुजंगी आदि छंदों का विशेष प्रयोग किया है। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई अपने छंद प्रयोग में रीतिकालीन कवियों की परम्परा से विशेष तथा गुजरात की चारणी काव्य परम्परा से सामान्य रूप से प्रभावित हैं।

इस तालिका से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने कवित्त का प्रयोग अपनी सभी रचनाओं में किया है, जबकि सवैया का बीस, दोहा का बाईस, छप्पय का आठ, पादाकुलक का सात, कुंडलिया तथा तोटक का तीन, चौपाई का चार, भुजंगी और सोरठा का दो तथा शेष छंदों का प्रयोग केवल एक ही रचना में किया है। इस प्रकार कवित्त सवैया और दोहा गोविन्द गिल्ला भाई के सर्वाधिक प्रिय छंद सिद्ध होते हैं। शेष छंद गुजरात की हिन्दी काव्य-परम्परा के विशेष और हिन्दी की सामान्य काव्य-परम्परा के सामान्य प्रभाव के कारण माने जा सकते हैं। क्योंकि न केवल ये संख्या में ही कम हैं वरन् उनका प्रयोग भी कम रचनाओं में मिलता है, जबकि कवित्त सवैया और दोहा की स्थिति इसके बिलकुल विपरीत है।

यहां यह द्रष्टव्य है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने रीतिकवियों की भांति अपने रीति ग्रंथों में कवित्त सवैया का प्रयोग उदाहरणों तथा दोहा का प्रयोग लक्षणों के लिए विशेष रूप से किया है। परन्तु कहीं कहीं कवित्त सवैया का प्रयोग लक्षणों और दोहा का प्रयोग उदाहरण के लिए भी किया है।[१] इसके अतिरिक्त पादाकुलक का प्रयोग भी भूषण मंजरी, शृंगार षोडशी आदि ग्रंथों में लक्षणों के लिए किया है।[२] अत: गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य में कवित्त सवैया को ही काव्यात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। दोहा यद्यपि सवैया से अधिक रचनाओं में प्रयुक्त मिलता है तथा संख्या में भी उससे अधिक है, परन्तु वह काव्य के लिए प्रयुक्त प्राय: नहीं मिलता। सर्वत्र लक्षणों, ग्रंथ प्रस्तावना या उपसंहार के लिए ही उसका प्रयोग मिलता है। अत: काव्यात्मक दृष्टि से दोहा विशेष रूप से महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। प्रवीण सागर में भी दोहा मुख्यत: कवि की उक्ति, जिनमें वह किसी प्रसंग का वर्णन करता है या किसी घटना आदि के अवतार की सूचना करता है - के रूप में प्रयुक्त मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रवीण सागर के जिन छंदों का विशेष प्रयोग मिलता है उनमें पादाकुलक

१- तुलनीय है : गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३, पृ० १, २।

२- ,, गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २५८, २६६।

और 'तोटक' के पश्चात कवित्त सवैया का ही स्थान है। शेष छंद प्रवीण सागर की विशेष शैली के अनुरूप विविध प्रकार से प्रयुक्त मिलते हैं। उदाहरणार्थ गाथा या गाहा का प्रयोग प्रवीण सागर की प्रत्येक लहर के अंत में अनिवार्य रूप से मिलता है। अत: गोविन्द गिल्ला भाई ने भी अपनी बारह लहरों के अंत में गाथा का प्रयोग नियमित रूप से किया है। कवित्त सवैया के अतिरिक्त अन्य सभी छंदों का प्रयोग प्रधान रूप से प्रवीण सागर में ही मिलता है तथा प्रवीण सागर गोविंद गिल्ला भाई की प्रमुख रचना न होने के कारण, उन छंदों का यहां विशेष अध्ययन आवश्यक प्रतीत नहीं होता। अत: गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा प्रयुक्त सभी छंदों में से उनके दो प्रतिनिधि छंद कवित्त सवैया का यहां विवेचनात्मक अध्ययन किया जा रहा है।

कवित्त

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा प्रयुक्त बाईस छंदों में से कवित्त ही एक ऐसा छंद है जो सर्वाधिक प्रयुक्त छंद है तथा सभी रचनाओं में प्रयुक्त मिलता है। अत: इसे निश्चित रूप से गोविन्द गिल्ला भाई का प्रतिनिधि छंद माना जा सकता है। रीतिकालीन कवियों की परम्परा से विशेष रूप से प्रभावित कवि के लिए यही स्वाभाविक भी है कि वह उसी छंद का विशेष प्रयोग करे जो उसकी प्रभावक परम्परा में विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है।[१]

इस छंद की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है।[२] अत: उसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों ने 'पयार' छंद को इसका मूल प्रेरक छंद माना है,[३] जबकि कुछ विद्वान प्राकृत पैंगलम् में आये हुए कुछ भाव व्यंजक छंदों में इसका मूल खोजते हैं।[४] कहा जाता है कि १५वीं शताब्दि में मार्द-गिक्सेन कवि ने इस छंद का आविष्कार किया था।[५]

१-तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग-सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २२२।
२- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २८३।
३- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २२३।
४- हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास - जितेन्द्रनाथ पाठक, पृ० २५६।
५- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २८३।

ध्रुपद गायन पद्धति केसाथ इस छंद का विशेष सम्बन्ध माना जाता है[१]। सूर तुलसी आदि अनेक भक्त - कवियों ने इस छंद का अपने पदों में बड़ा ही ललित प्रयोग किया है।[२] छंद और संगीत का वैसे भी घनिष्ट संबंध माना गया है।[३] अत: ध्रुपद गायकी के विकास के साथ साथ इस छंद का विशेष विकास हुआ हो तो असंगत नहीं माना जा सकता।

वास्तविकता जो भी हो, परन्तु कवित्त छंद की प्रकृति वैदिक छंदों की प्रकृति के विशेष निकट है। दोनों प्रकार के छंदों में मात्रा गुण आदि का बंधन नहीं मिलता। इसी आधार पर कुछ विद्वानों ने वैदिक छंद अनुष्टप को कवित्त का मूल छंद माना है।[४] वैदिक छंदों में से केवल अनुष्टुप छंद ही ऐसा है जो ऋग्वेद काल से लेकर आज तक भारत की भाषाओं में परिव्याप्त मिलता है[५]। पंतजी ने कवित्त को हिन्दी का औरसजात छंद न जाने किस तर्क के आधार पर माना है।[६]

हिन्दी पिंगल ग्रंथों में कवित्त छंद की परिगणना दंडक के अंतर्गत की गयी है।[७] जिसके सामान्यत: दो भेद किये गये हैं, एक साधारण दंडक और दूसरा मुक्तक दंडक। साधारण दंडक गणबद्ध होते हैं जबकि मुक्तक दंडक गण मुक्त/ परन्तु उनमें कहीं कहीं लघु गुरु अक्षर की विशेष व्यवस्था होती है।[८] मुक्तक दंडक के पिंगल ग्रंथों में अनेक भेद किये गये हैं, परन्तु उनमें से मनहरण, जलहरण, रूपघनाक्षरी और देवघनाक्षरी ही विशेष प्रचलित हैं और उन्हीं को सामान्यत: कवित्त नाम से अभिहित किया जाता है।[९] इस छंद में छब्बीस से अधिक वर्ण पाये जाते हैं।[१०]

१- तुलनीय है : वही, पृ० २८३।

२- ,, वही।

३- आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० ६७।

४- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २८३।

५- आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० १९०।

६- पल्लव प्रवेश, पृ० २६।

७- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २२३।

८- तुलनीय है : छंद प्रभाकर - भानु जी, २०७।

९- ,, वही, पृ० २१३।

१०- ,, वही, पृ० २०७।

गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने गोविन्द हजारा नामक संग्रह ग्रंथ में कवित्त छंद की शास्त्रीय चर्चा की है,[१] जो बहुत कुछ `छंदप्रभाकर` के समान ही है। परन्तु उन्होंने मुक्तक, दंडक या कवित्त छंद की वर्ण संख्या की उत्तर सीमा भी स्पष्ट कर दी है। उनके अनुसार :

वर्ण सतावीस तैं सुभग सौ तक दंडक होय।[२]

परन्तु उनकी रचनाओं में ३०, ३१, ३२ और ३३ वर्ण वाले दंडक ही अधिक प्रयुक्त मिलते हैं। इसीलिए `गोविन्द हजारा` में भी उन्होंने सौ वर्ण तक के दंडकों को मान कर भी उन सब के उदाहरण नहीं दिये हैं। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ने अपनी रचनाओं में साधारण और मुक्तक दोनों प्रकार के दंडकों में से केवल उन्हीं दंडकों का अधिक प्रयोग किया है जो ३० और ३३ वर्ण की सीमा में आते हैं।

हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने भी दंडक के अनेकानेक भेदों में से केवल `मनहर` और `रूप घनाक्षरी` का ही अधिक प्रयोग किया है।[३] गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं में भी इन्हीं छंदों का विशेष प्रयोग मिलता है। परन्तु इन दोनों छंदों का समान रूप से प्रयोग प्रारम्भिक रचनाओं में नहीं मिलता, वहाँ मनहर का ही विशेष प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ `विष्णु विनय पच्चीसी` और `विवेक विलास` जैसी रचनाओं में `मनहर` ही प्रधान रूप से मिलता है, जबकि `षट्ऋतु - वर्णन` और `पावस पयोनिधि` जैसी रचनाओं में मनहर के साथ साथ रूप घनाक्षरी का प्रयोग भी समान रूप से मिलने लगता है। उक्त दोनों छंदों का एक एक पाद यहाँ देखा जा सकता है :

मनहर - जाकी छबिपास मैन, मुकुर मलीन लागै,
ऐसी अभिराम आभा, नैन तैं निहारिये।[४]

१- तुलनीय है : गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३,पृ० २१-२५।

२- ,, वही, पृ० २३, छं० १२४।

३- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास,षष्टम् भाग-सं० डा० नगेन्द्र,पृ०२२३।

४- गोविन्द ग्रंथमाला पृ० २८७, राधा मुख षोडशी, छं० ५।

रूप घनाक्षरी - उमडि घुमडि घन, गगन घुंमडि आयो,
चंचला चमक लगी, बेर बेर सर्व थल[१]।

स्पष्ट है कि उक्त पंक्तियों में कवि ने वर्ण संख्या के साथ साथ आवश्यक यतियों का भी निर्दोष निर्वाह किया है। मनहर छंद में ८, ८, ८, ७ पर और रूप घनाक्षरी में ८, ८, ८, ८ पर यति मानी गयी है, साथ ही मनहर के चरणान्त में गुरु और रूप घनाक्षरी में के चरणान्त में लघु वर्ण का प्रयोग भी आवश्यक कहा गया है। परन्तु सामान्यत: इन यतियों का पूर्णत: निर्वाह कठिन हो जाता है/ अत: मनहर में १६, १५ और रूप घनाक्षरी में १६, १६ पर विराम की योजना भी की गयी है।[२] परन्तु जैसा कि उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई के इन छंदों के प्रयोगों में यति और विराम का उचित निर्वाह मिलता है। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्त छंद के प्रयोगों में लाक्षणिक दोष नहीं मिलते। यहां तक कि इनकी प्रारंभिक रचनाओं में भी किसी प्रकार का लाक्षणिक दोष नहीं मिलता[३]।

जैसा कि छंद-तालिका से स्पष्ट है, गोविन्द गिल्ला भाई को यह छंद सर्वाधिक प्रिय था। उन्होंने अपनी सभी रचनाओं में इस छंद का प्रयोग किया है। यहां तक कि लक्षण ग्रंथों में लक्षणों के लिए भी इस छंद का प्रयोग किया है[४], जो इस बात का द्योतक माना जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई छंद और रस या विषय के बीच कोई विशेष प्रकार का संबंध नहीं मानते थे। साथ ही दंडक के अनेक प्रचलित भेदों में से केवल दो का ही प्रयोग यह सिद्ध करता है कि उनका दंडक पर आंशिक अधिकार ही था। परन्तु उन्होंने जिन छंदों का जितना भी प्रयोग किया है, वह सफल और सुन्दर कहा जा सकता है।

१- गोविन्द हजारा ह०प्र०सं० २०३, पृ०२५ छं० १३५।
२- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्टम् भाग-सं०डा० नगेन्द्र, पृ०२२३।
३- ,, गोविन्द ग्रंथमाला, विवेक विलास, पृ० ४२,४३ आदि।
४- ,, गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३ पृ० २४, २५ आदि।

सवैया

कवित्त के समान ही सवैया भी रीतिकालीन कवियों का प्रमुख छंद रहा है,[१] तथा कवित्त के समान ही इस छंद की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। श्री नामवरसिंह ने सवैया के विषय में लिखा है कि संस्कृत का जो वर्णिक वृत्त चार सगणवाला त्रोटक छंद है वही द्विगुणित होकर दुर्मिल सवैया बन जाता है।[२] कुछ अन्य विद्वानों ने प्राकृत पैंगलम् में आये दुर्मिल, सुंदरी, किरीट, सुमुखी आदि वर्णिक वृत्तों से सवैया की व्युत्पत्ति मानी है क्योंकि ये नाम सवैया के भेदों के नामों के समान तो हैं ही, उनकी रचना सवैया की रचना के समान भी है।[३] विद्वानों की मान्यता है कि सवैया का प्रचलन प्राकृत पैंगलम् के रचना काल सं० १३०० के पूर्व ही मानना चाहिए।[४] आशय यह कि कवित्त के समान ही सवैया की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। परन्तु इतना निश्चित है कि इस छंद का प्रयोग रीतिकाल से पूर्व भक्तिकाल में ही प्रचुर मात्रा में होने लगा था, और हिन्दी में इस छंद की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी।[५] अकबर कालीन कवि जैसे गंग, टोडरमल,[६] नरोत्तमदास और तुलसी आदि कवियों में इस छंद के सुन्दर प्रयोग देखे जा सकते हैं।

वस्तुत: सवैया नाम किसी छंद का प्रतीत नहीं होता, वह छंद पाठ की एक शैली विशेष का नाम है। अब भी मथुरा आदि स्थानों पर जहां परंपरानुसार इस छंद का पाठ किया जाता है, देखा जा सकता है कि सवैया नाम धारी सभी छंदों के चारो पादों के पाठ के पश्चात प्रथम पाद पुन: पढा जाता है, इस प्रकार जिन छंदों का सवाया पाठ किया जाता है उन्हें सवैया नाम से अभिहित किया जाता है। डा० नगेन्द्र ने सवैया के अन्तिम पाद के पुन: पाठ के विषय में लिखा है,[७] जो ब्रज

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८२३।

२- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - डा० नामवरसिंह, पृ० ३०४।

३- हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास - जितेन्द्रनाथ पाठक, पृ० २८७, २८८।

४- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २१८।

५- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८२३।

६- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, सं० डा० नगेन्द्र(षष्टम् भाग), पृ० २१८, २१६।

७- देव और उनकी कविता, उत्तरार्ध, पृ० २६६ - डा० नगेन्द्र।

के छंद पाठ की शैली के अनुरूप नहीं है। वस्तुस्थिति जो भी हो परन्तु इतना निश्चित है कि किन्हीं छंद विशेषों को सवाये पढ़े जाने के कारण तथा मात्रा या वर्ण की संख्या की समानता के कारण, हिन्दी में सामूहिक रूप से सवैया कहा जाता है। कुछ विद्वानों ने २२ से २६ अक्षर[१] के चरण वाले जाति छंदों या वार्णिक वृत्तों को सामूहिक रूप से सवैया माना है। परन्तु पिंगल[२] ग्रन्थों में मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के सवैयों का उल्लेख मिलता है। २२ से २६ अक्षर तक के वर्णिक सवैयों के साथ साथ[३] ३१ और ३२ मात्रा वाले वीर और केतकी नामक मात्रिक सवैया भी मिलते हैं।

मात्रिक सवैया के न केवल पिंगल ग्रंथों में सीमित भेद बताये गये हैं वरन् उनका प्रयोग भी हिन्दी में बहुत ही सीमित है। गोविन्द गिल्ला भाई ने भी इस छंद के विवेचन के साथ ही कुछ उदाहरणों में इसका प्रयोग किया है।[४] वर्णिक सवैया के गणों के आधार पर अनेक भेद किये गये हैं जिनमें से १४ भेद सामान्यत: मान्य हैं।[५] परन्तु सामान्यत: मान्य १४ वर्णिक सवैयों में मत्तगयन्द, दुर्मिल, किरीट, सुमुखी आदि कुछ सवैयों का ही अधिक प्रयोग रीतिकालीन कवियों[६] ने किया है, शेष सभी भेद लक्षण ग्रंथों में ही विशेष रूप से मिलते हैं।

उपरोक्त छंद-तालिका से यह स्पष्ट हो चुका है कि गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा प्रयुक्त छंदों में संख्या की दृष्टि से सवैया का स्थान उनकी रचनाओं में तृतीय है, क्योंकि दोहा का प्रयोग उनकी रचनाओं में सवैया से अधिक मिलता है। परंतु क्योंकि दोहा का प्रयोग लक्षणों, ग्रंथ प्रस्तावना तथा उपसंहार आदि के रूप में अधिक हुआ है, अतः उनका काव्यात्मक महत्व अधिक नहीं माना जा सकता। इसलिए काव्यात्मक दृष्टि से कवित्त के पश्चात् सवैया का ही स्थान सिद्ध होता है।

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८२३।

२- तुलनीय है : छंद प्रभाकर - भानुजी, पृ० ७४, २००।

३- ,, : वही, पृ० ७२, तुलनीय है : रण पिंगल भी।

४- ,, : गोविन्द हजारा ह०प्र०सं० २०३, २५ आदि।

५- ,, : हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्टम् भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ०२१६।

६- ,, : वही, पृ० २१६।

गोविन्द गिल्ला भाई ने सवैया का प्रयोग उसकी प्रकृति के अनुरूप,[1] शृंगार रस की रचनाओं में ही किया है। इसीलिए शृंगार सरोजिनी, समस्या पूर्ति प्रदीप और प्रवीण सागर जैसी रचनाओं में इसका विशेष प्रयोग मिलता है, और गोविन्द ज्ञान बावनी, परब्रह्म पच्चीसी आदि वैराग्य विषय प्रधान या शान्त रस की रचनाओं में इसका प्रयोग नहीं मिलता।[2] विवेक विलास में सवैया का कुछ प्रयोग अवश्य किया है, परन्तु सामान्यत: इस छंद का प्रयोग कवि ने शृंगार परक रचनाओं में ही अधिक किया है, जो रीतिकालीन कवियों की परम्परा तथा छंद की प्रकृति के अनुरूप कहा जा सकता है। रीतिकालीन कवियों के समान गोविन्द गिल्ला भाई ने भी मत्तगयंद, दुर्मिल, किरीट और सुमुखी का विशेष प्रयोग किया है, परन्तु इनके अतिरिक्त मदिरा, सुमिला, सुधा, विथा आदि कई प्रकार के सवैयों का सुन्दर प्रयोग किया है। कवित्त के समान ही इस छंद के प्रयोग में भी किसी प्रकार की लाक्षणिक त्रुटि नहीं खोजी जा सकती। हां, कहीं कहीं छंद में गणों की उचित व्यवस्था रखने के लिए उन्होंने शब्दों को तोड़ा मरोड़ा अवश्य है, परन्तु छंद को दोषित नहीं होने दिया। सवैया का एक उदाहरण यहां देखा जा सकता है

भूषण भूषित भामिनि के भुज शोहत है सुखदाय अपारे।
अंगद तें अति ओप धरे पुनि कंकन चूरि लसै कर भारे।
छाप छला कर पल्लव में पुनि मानिक सें नख नूर पसारे।
गोविंद सो अनुराग मनो उफनाइ तनु निज हाथ निकारे।[3]

स्पष्ट है छंद की शुद्धि के आग्रह के कारण गोविन्द गिल्ला भाई ने चूरी, भामिनी जैसे शब्दों को चूरि भामिनि बना दिया है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई अपनी शास्त्र निष्ठ प्रकृति के कारण छंदों का शुद्ध प्रयोग करने में सफल हुए हैं। अत: कवित्त के समान सवैया के प्रयोग में भी गोविन्द

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८१३।
२- ,, : छंद तालिका।
३- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २७८, शृंगार षोडशी, छं० ४३।

गिल्ला भाई को सफल कहा जा सकता है ।

अलंकार प्रयोग

संस्कृत और हिन्दी के काव्य-शास्त्र के ग्रंथों में अलंकारों का विस्तृत विवेचन, वर्गीकरण तथा व्याख्या आदि बहुत कुछ समान रूप से मिलती है[1], साथ ही गोविन्द गिल्ला भाई ने भी अपने शब्द विभूषण जैसे अलंकार विषयक ग्रंथों में अलंकार की सविस्तार चर्चा की है, अत: अलंकारों की सैद्धान्तिक चर्चा गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व के अध्ययन के प्रसंग में की जायगी परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य में अलंकार-प्रयोग के अध्ययन से पूर्व काव्य में अलंकार के प्रयोग के औचित्य तथा हिन्दी में अलंकार प्रयोग की परम्परा के विषय में संक्षिप्त विचार किया जा सकता है ।

अलंकार-प्रयोग के औचित्य के विषय में आचार्यों में मतैक्य नहीं है, क्योंकि जो अलंकारवादी हैं उन्होंने काव्य शोभा के कारण भूत सभी तत्वों को अलंकार माना है[2], अत: अलंकार का प्रयोग ही उनके अनुसार काव्य रचना है। परिणाम स्वरूप अलंकार के प्रयोग के औचित्य का प्रश्न ही उनके अनुसार नहीं उठता । परन्तु रसवादी, ध्वनिवादी तथा आधुनिक विचारकों के अनुसार, जो अलंकार और अलंकार्य में भेद मानते हैं, तथा प्रथम को द्वितीय का उपकारक मानते हैं, अलंकार के प्रयोग का औचित्य अलंकार्य के उपकारकत्व में है[3]। आधुनिक विचारकों का अभिमत है कि अर्थ-सौन्दर्य के संपादन में सहायक होने के कारण काव्य में अलंकारों का विशेष महत्व है, निस्संदेह यह महत्व रस, ध्वनि और गुण रीति के बाद का ही है। अलंकारों से अर्थ की प्रेषणीयता, प्रभविष्णुता और स्पष्टता का संपादन होता है। परन्तु काव्य में अलंकार का औचित्य वहीं तक है जहां तक वे साधन रूप में ही हों, साध्य न बन जायं। अलंकार, काव्य के लिए हों, काव्य अलंकारों के लिए न हो जायं[4]। सैद्धान्तिक

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६४, ६५, ६६ ।
२- ,, : काव्यादर्श - दंडी २।१ । काव्यालंकार सूत्र - वामन १।१।२ ।
३- ,, : काव्यप्रकाश - मम्मट ८।६७ ।
४- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६१, ६२ ।

दृष्टि से अलंकार के विषय में हिंदी के प्राचीन तथा आधुनिक आचार्यों का कुछ आचार्यों के अपवाद सहित प्राय: यही मत है।[१] परन्तु यह केवल सिद्धान्त ही सिद्धान्त है व्यवहार में हिन्दी के कवियों ने सर्वत्र सर्वदा इस सिद्धान्त का पालन नहीं किया है।

काव्य में अलंकारों का प्रयोग काव्य के इतिहास के प्रथम दिन से माना जा सकता है, साथ ही अलंकार के विषय में सैद्धान्तिक धारणा चाहे जो कुछ भी रही हो, परन्तु अलंकार का प्रयोग किसी न किसी रूप में सभी कवियों ने किया है। हिन्दी-साहित्य के विषय में भी सामान्यत: यही सत्य है, परन्तु हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक युग ऐसा भी आता है जब काव्य में अलंकारों का प्रयोग सभी कवियों ने उन्हें प्रमुखता देते हुए किया है, तथा कुछ कवियों ने तो अलंकार-प्रयोग को ही काव्य का सर्वस्व मान कर, काव्य में अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकार के इस प्राधान्य को देख कर ही मिश्रबंधुओं ने उस काल विशेष को अलंकृत काल कहा है।[२] अलंकारों का प्रयोग उक्त काल से पूर्व तथा पश्चात् भी काव्य में सामान्य रूप से मिलता है, परन्तु अलंकारों का विशेष रूप से उस काल विशेष में प्रयोग होने के कारण उसे अलंकृत काल कहना एक दृष्टि से युक्तिसंगत भी है।[३] आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि रीतिकाल का अलंकृत-काल नाम रीतिकाल से कहीं अधिक युगगत प्रवृत्ति का प्रदर्शक है।[४] रीतिकाल में न केवल काव्य वरन् चित्रकला आदि में भी अलंकरण प्रवृत्ति प्रधान रूप से मिलती है।[५] आशय यह कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह प्रथम समय था जब कि काव्य में अलंकार-प्रयोग का इतना महत्व हो गया था।

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ०६१।

२- ,, : हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्ठ भाग, संपा० डा०नगेन्द्र, पृ०१६३।

३- ,, : वही, पृ०१६४।

४- हिंदी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग, अनुवचन : विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ०७।

५- हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्ठ भाग, सं०डा०नगेन्द्र, पृ०२१, २२ आदि।

रीतिकाल में अलंकारों का प्रचुर प्रयोग उस युग के समूचे काव्य-साहित्य की एक प्रमुख विशेषता बन गयी थी। उन्होंने अलंकृत शैली में ही काव्य सृजन किया है, परन्तु प्रधानत: साध्य रस ही रहा है । इसीलिए रीतिकाल में सभी प्रमुख एवं प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं में कुछ छंदों के अपवाद के साथ चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती ।[1] परन्तु इस युग में ऐसे कवि भी अनेक मिलते हैं जिनके लिए अलंकार प्रयोग अपने आप में एक साध्य था, और कविता अलंकार प्रयोग या चमत्कार प्रदर्शन के लिए साधन मात्र थी । परन्तु इस प्रकार के कवियों का अभी विशेष अध्ययन नहीं हुआ है । क्योंकि अभी तक हिन्दी के विद्वान् रीतिकाल के प्रमुख प्रतिनिधि कवियों का ही अध्ययन कर सके हैं । परन्तु इतना निश्चित है कि रीतिकाल में ऐसे अनेक कवि मिल सकते हैं जिनके लिए अलंकार-प्रयोग उनके काव्य का प्रमुख साध्य था । गोविन्द गिल्ला भाई रीतिकाल के इस प्रकार के कवियों की परम्परा के बहुत अधिक निकट हैं ।

गोविन्द गिल्ला भाई के काव्यादर्श के विषय में विचार करते हुए स्पष्ट किया जा चुका है कि वे केशवदास जैसे कवियों की परम्परा में ही आते हैं, जिन्होंने सिद्धान्तत: काव्य की आत्मा रस मान कर भी व्यवहार में चमत्कारपूर्ण अलंकृत कविता ही लिखी है ।[2] साथ ही गोविन्द गिल्ला भाई अलंकार प्रयोग के विषय में अत्यन्त जागरूक थे । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ने अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है, और जानबूझ कर किया है तथा इसे अपने काव्य की एक बड़ी उपलब्धि माना है । इसीलिए उन्होंने अपनी रचनाओं के परिचय आदि के प्रसंग में उनकी अलंकारमयता का उल्लेख किया है, - जिसके लिए कहीं कहीं उन्होंने अपूर्व चमत्कारपूर्ण कवित्त आदि शब्दों का प्रयोग भी किया है,[3] तथा हस्तलिखित ग्रंथों में छंद में सायास प्रयुक्त प्रमुख अलंकार का नामोल्लेख भी किया है,[4] जिससे स्पष्ट हो जाता है कि

१- वही, पृ० २६३ ।
२- तुलनीय है, सप्तम अध्याय, काव्यादर्श ।

३- गोविन्द ग्रंथमाला, उपोद्घात, पृ० १४, १५, २२ ।

४- उदाहरणार्थ , तुलनीय है : समस्या पूर्ति प्रदीप, ह०प्र०सं०१६२ पृ० १, २ आदि ।

गोविन्द गिल्ला भाई के मन में अलंकारों के प्रयोगों का विशेष आग्रह था तथा वे उसे अपने काव्य की महती उपलब्धि मानते थे। परिणाम स्वरूप उनके काव्य में रीतिकालीन कवियों द्वारा प्रयुक्त एवं चर्चित प्राय: सभी अलंकार मिल जाते हैं। प्रन्तु सायास, आग्रहपूर्वक अलंकारों का प्रयोग किये जाने के कारण उनमें वह सौन्दर्य, नहीं मिलता जो रीतिकालीन कवियों के अलंकार-प्रयोगों में देखा जा सकता है। गोविन्द गिल्ला भाई की समूची शृंगार कविता में क्वचित कदाचित् ही कोई छंद मिले, जिसमें अलंकार-प्रयोग का आग्रह न दृष्टिगोचर हो। हाँ, भक्ति और नीति-काव्यों में अवश्य यत्र-तत्र, किसी विचार या भाव-प्राधान्य के कारण, कुछ ऐसे छंद मिल जाते हैं, जिनमें प्रत्यक्षत: किसी अलंकार का आग्रह नहीं मिलता। शृंगार कविता के अध्ययन के प्रसंग में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि भाव अंकन की ओर गोविन्द गिल्ला भाई की विशेष वृत्ति नहीं थी। इसीलिए उनकी कविता में सौन्दर्य का स्वरूपात्मक वर्णन ही अधिक मिलता है, भावात्मक या प्रभावात्मक वर्णन नहीं। रीतिकालीन कवियों में रीतिबद्ध कवियों के विषय में विद्वानों की यह सामान्य धारणा है कि उनके रूप-चित्रण में अप्रस्तुत योजना, रूप-सादृश्य के आधार पर विशेष रूप से मिलती है, साधर्म्य के आधार पर नहीं।[१] गोविन्द गिल्ला भाई की शृंगार-कविता में भी इसी प्रकार जहाँ रूपक, उपमा, आदि साम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग मिलता है, वहाँ अप्रस्तुत योजना रूप-सादृश्य के आधार पर ही दृष्टिगोचर होती है। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई की कविता में अलंकार - प्रयोग रीतिबद्ध कवियों की परम्परा के अनुरूप ही नहीं, उस पर निर्भर भी है। अत: कहा जा सकता है कि रीतिबद्ध कवियों की परम्परा से प्राप्त अलंकार ही गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य के सर्वस्व हैं तथा उन अलंकारों का प्रयोग ही वे अपने काव्यत्व की चरम उपलब्धि मानते थे।

गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य ग्रंथों में प्रयुक्त अलंकारों का अध्ययन भी यही सिद्ध करता है। गोविन्द ग्रंथमाला में प्रकाशित इनकी १४ रचनाओं में प्रयुक्त प्रमुख अलंकारों की नामावली यहाँ देखी जा सकती है : अतद्गुण, अनुगुन, अनुप्रास, अन्योक्ति, अनन्वय, अपह्नुति, अर्थान्तरन्यास, अवज्ञा, असंगति, उत्प्रेक्षा, उपमा,

१. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्ठम भाग, पृ० ३४४ - सं० डॉ० नगेन्द्र।

उल्लेख, उत्तरोत्तर, कारनमाला, काव्यार्थपत्ति, छेकानुप्रास, तद्गुण, तुल्ययोगिता, दीपक, निदर्शना, निरुक्त, परिकर, पर्याय, प्रतीप, प्रतिवस्तूपमा, प्रत्यक्ष प्रमाणालंकार, भाविक, भेदकातिशयोक्ति, भ्रम, मिथ्याध्यवसित, मीलित, मुक्त केशी, यथासंख्य, यमक, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, ललितोपमा, लाटानुप्रास, लेश, लोकोक्ति, विकस्वर, विकल्प, विचित्र, विनोक्ति, विभावना, विषम, विषाद, विशेष, विशेषोक्ति, व्यतिरेक, व्याघात, श्लेष, सम, संदेह, संभावना, सामान्य, समुच्चय, सार, सुसिद्ध, स्मरण, स्वभावोक्ति। गोविन्द हजारा में इन अलंकारों के अतिरिक्त गोविन्द गिल्ला भाई के छंदों में जिन अलंकारों का प्रयोग मिलता है उनकी नामावली इस प्रकार है : आक्षेप, एकावली, गूढोक्ति, गूढकाव्य, चित्रालंकार, मुकरी, छेकोक्ति, दृष्टिकूट, परिसंख्या, पहेलिका, पिहित, प्रश्नोत्तरा, मालोपमा, मुद्रा, रत्नावली वीप्सा, वक्रोक्ति, वाक्छल, विरोधाभास, विवृतोक्ति, सिंहावलोकन, सूक्ष्म/इन अलंकारों के अतिरिक्त परिवृत्त, समाधि शृंगार सरोजिनी में प्रहर्षण, व्याजोक्ति, सहोक्ति समस्या पूर्ति प्रदीप में अनुज्ञा, काव्यलिंग, दृष्टान्त आदि और भी प्रवीण सागर में प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने रीतिकालीन कवियों द्वारा प्रयुक्त एवं चर्चित प्राय: सभी अलंकारों का अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है। 'अन्योक्ति अरविन्द', 'श्लेष चन्द्रिका', 'वक्रोक्ति विनोद', 'रत्नावली रहस्य', 'शब्द विभूषण', 'अलंकार अंबुधि' और 'गोविन्द हजारा' नामक ग्रंथों में अलंकारों की शास्त्रीय चर्चा की है, जिनमें उपरोक्त अलंकारों में से अधिकांश अलंकारों का समावेश किया गया है। गोविन्द गिल्ला भाई के आचार्यत्व के अध्ययन के संदर्भ में इनके अलंकार-विवेचन के विषय में विचार किया जायेगा/परन्तु यहां इतना विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि इनके द्वारा प्रयुक्त सभी अलंकार इनके अलंकार-ग्रंथों में नहीं मिलते। अपने अलंकार-ग्रंथों में जिन अलंकारों का कवि ने विवेचन किया है निश्चित ही उन अलंकारों का कवि की दृष्टि में विशेष महत्व है। अलंकार ग्रंथों में चर्चित तथा काव्य ग्रंथों में प्रयुक्त अलंकारों की तुलना से, यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि कष्टसाध्य क्लिष्ट अलंकार जैसे यमक, श्लेष, वक्रोक्ति,

रत्नावली, मुद्रा, वाक्यछल, गूढोक्ति आदि न केवल इनकी दृष्टि में अधिक महत्वपूर्ण हैं, वरन् अधिक प्रिय भी हैं तथा इन अलंकारों के सफल प्रयोग में ही इन्होंने अपने कवि-कर्म की सफलता मानी है। इसीलिए अन्योक्ति, श्लेष, वक्रोक्ति तथा रत्नावली पर इन्होंने न केवल स्वतंत्र ग्रंथ लिखे हैं वरन् अन्य अलंकार ग्रंथ, जैसे 'शब्द विभूषण' और 'गोविन्द हजारा' में इन अलंकारों की अन्य अलंकारों की तुलना में अधिक विस्तार से चर्चा की है। इन अलंकारों के समान ही अनुप्रास अलंकार भी इन्हें अधिक प्रिय है जिसका काव्य-कृतियों में प्रचुर प्रयोग तो मिलता ही है, साथ ही 'शब्द विभूषण' तथा 'गोविन्द हजारा' का एक एक अनुच्छेद भी इसके विवेचन में कवि ने लगाया है। आशय यह कि अनुप्रास, श्लेष, यमक, वक्रोक्ति, रत्नावली, अन्योक्ति आदि कुछ ही ऐसे अलंकार हैं जिनका गोविन्द गिल्ला भाई ने विस्तार से विवेचन किया है तथा प्रचुर प्रयोग किया है। शेष अलंकारों में से कुछ अलंकार जैसे रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि ऐसे अलंकार हैं जिनका विवेचन तो अन्य शेष अलंकारों के समान अधिक विस्तार से नहीं मिलता परन्तु प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। अनुप्रासादि अलंकारों को छोड़ कर शेष सभी अलंकारों का विवेचन 'शब्द विभूषण' और 'गोविन्द हजारा' के अंतिम दो अनुच्छेदों तक ही सीमित है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा चर्चित एवं प्रयुक्त अलंकारों में से अनुप्रास, यमक आदि कुछ ऐसे अलंकार हैं जिनका प्रयोग तथा विवेचन अन्य सभी अलंकारों की अपेक्षा अधिक विस्तार से किया गया है। द्वितीय प्रकार के अलंकार वे हैं जिनका प्रयोग तो अधिक मिलता है परन्तु विवेचन अन्य अलंकारों के समान संक्षिप्त ही है जैसे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, प्रतीप, अपह्नुति, आदि। तृतीय प्रकार के वे सभी अलंकार हैं जिनका प्रयोग और विवेचन दोनों समान रूप से संक्षिप्त है।

गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा प्रयुक्त तथा चर्चित अलंकारों के इस तुलनात्मक परक विवरणात्मक अध्ययन से इनकी तद्विषयक धारणा तथा अभिरुचि सहज ही स्पष्ट हो जाती है। अत: यह कहा जा सकता है कि सिद्धान्तत: नहीं तो व्यवहारत: तो अवश्य ही गोविन्द गिल्ला भाई अलंकारवादी कवि थे तथा कष्टसाध्य चमत्कारपूर्ण

अलंकार-प्रयोग इन्हें अधिक प्रिय था/इसीलिए अनुप्रास, यमक, श्लेष जैसे शब्दालंकारों का प्रयोग इनकी रचनाओं में विशेष रूप से मिलता है। यमक का एक उदाहरण यहां देखा जा सकता है :

सागर के सुतन से कामिनी के केश रखे,
सागर के सुतन से भाल रखे भारे हैं।
सागर के सुतन से भौंह मनभाइ रखी,
सागर के सुतन से नैन निरधारे हैं।
सागर के सुतन से अधर अरुन रखे,
सागर के सुतन से दशन दिखारे हैं।
सागर के सुतन से ग्रीव कौं गुविंद रखी,
सागर के सुतन से बैन पुनि धारे हैं।[१]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत छन्द में सिवार, चंद्र, सारंग, धनुष, मीन, प्रवाल, मोती, शंख, और अमृत के लिए समान शब्दों के प्रयोग की संभावना पर ही पूरा भाव-संभार निर्भर है। नायिका के केश, भाल, भृकुटी, नैन, अधर, दशन, ग्रीवा तथा वचन के लिए रीति परम्परानुसार उक्त उपमानों के प्रयोग के साथ साथ 'सागर के सुतन से' की पुन: पुन: आवृत्ति छंद के सौन्दर्य को समाप्त कर देती है। क्योंकि परम्परा प्राप्त उपमानों में भी प्रयोगगत, भाषागत या प्रबन्धगत जो कुछ सौन्दर्य संभव हो सकता था वह भी यमक के आग्रहपूर्वक प्रयोग ने समाप्त कर दिया है। परन्तु[२] अन्यत्र अनेक छंदों में गोविन्द गिल्ला भाई ने यमक का सुन्दर प्रयोग किया है। अनेक स्थानों पर कवि ने यमक के साथ साथ अन्य अलंकारों का पुट भी दिया है। सामान्य यमक और श्लेष की संसृष्टी का निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य है :

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ३६६ छवि सरोजिनी छं० ५५।
२- तुलनीय है : गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ३६२, २६३।

भाय भ्रम रहिता ये बनिता की बेनी जैसे,
तैसें भ्रम रहिता ये कविता सुहात है ।
अच्चार अम्मियधर युवती के ओठ जैसें,
अच्चार अम्मियधर कविता लखात है ।
सोहैं सर सहिता ज्यों कामिनी के कुच जैसे,
चारु सरसहिता ये कविता विभात है ।
गोविंद कहत तातें जाने जिय माँहि मैं ने,
कामिनी और कविता में फेर ना दिखात है ।[१]

गोविन्द गिल्ला भाई ने अनुप्रास यमक आदि के समान ही श्लेष और वक्रोक्ति के सुन्दर प्रयोग किये हैं। 'श्लेष चंद्रिका' और 'वक्रोक्ति विनोद' नामक रचनाओं में इनके उदाहरण देखे जा सकते हैं। गोविन्द गिल्ला भाई ने यद्यपि सात सात अर्थवाले श्लेषालंकारों का प्रयोग किया है, परन्तु उनके अर्थग्रहण में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं पड़ती। श्लेष का इतना सहज प्रयोग इनकी एक बड़ी विशेषता है। बरात और वसंत विषयक श्लेष का एक छंद यहाँ देखा जा सकता है:

राजत रसाल मौर सुन्दर सुखद पुनि,
सुमन सफल महा रुचिर लसंत हैं ।
लाज होम करी महा फिरती सुभौंरी लखि,
अलिन के उर माँहि आनंद अनंत है ।
ध्वनि करि बेर बेर शाखा उच्चरत द्विज,
आशिष अनेक भौंर भाव तें भनंत है ।
गोविंद कहत यह बिलसे बरात कैधों
ओपत अनूप आप विमल वसंत है ।[२]

प्रस्तुत छंद के श्लिष्ट शब्दों के विषय में यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि ये सभी शब्द 'बरात' और 'वसंत' की अत्यन्त सामान्य विशेषताओं

१- शब्दविभूषण ह०प्र०स० १७३, पृ० ४८, छं० २५ ।

२- श्लेष चंद्रिका, ह०प्र०सं० १५५, पृ० ८६ छं० ६५ ।

के सूचक हैं। अत: दोनों पक्षों में ये शब्द सहज ही घटित हो जाते हैं। परन्तु कहीं कहीं श्लेष के सभी पक्षों का अर्थ इतना अधिक सामान्य हो गया है कि उन छंदों में श्लेष का रूप अत्यंत तिरोहित सा प्रतीत होता है तथा उसके अस्तित्व के विषय में शंका होने लगती है। गोविन्द गिल्ला भाई ने जहां पांच, छ: और सात अर्थवाले श्लेषों का प्रयोग किया है, सामान्यत: वहां छंदों की यही स्थिति है। सात अर्थवाले श्लेष के प्रयोग का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है-

सोहत सबल महा पूरन प्रतापवान,
तदपि दयाल दिल ओपत अपार है।
पोषत प्रचुर पुनि जगत के जीवन कों,
देत बरदान बहु नेक निरधार हैं।
गोविंद विलोको वाकों शोभा के समूह महा,
कोविद करत केतें आस्य यों उचार हैं।
हरि हैं कि हर हैं कि अज हैं कि इन्द्र हैं कि,
सूर हैं कि चंद्र हैं कि पवन कुमार हैं।[1]

गोविन्द गिल्लाभाई ने प्रस्तुत छंद को विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, हनुमान विषयक श्लेष कहा है[2], परन्तु इस छंद को इस प्रकार तो राम, कृष्ण, गणेश आदि किसी भी और कितने ही देवताओं से संबंधित श्लेष का उदाहरण कहा जा सकता है, क्योंकि प्रस्तुत छंद की प्रथम तीन पंक्तियों में देवताओं की इतनी सामान्य विशेषताओं का वर्णन किया गया है कि वे किसी भी देवता में संभव हो सकती हैं। आशय यह कि प्रस्तुत छंद में श्लेष अलंकार श्लिष्ट शब्दों के अर्थ की सामान्यता के कारण तिरोहित सा हो गया है। एक दृष्टि से प्रस्तुत छंद में श्लेष अलंकार नहीं भी माना जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई को कष्टसाध्य क्लिष्ट अलंकार प्रयोग विशेषरूप से प्रिय था, जिसमें इन्हें आंशिक सफलता भी मिली है।

१- श्लेष-चंद्रिका, पृ० १३८, छं० ११२।
२- वही।

गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार प्रयोग के विषय में यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि उन्होंने साम्यमूलक अलंकारों का ही अधिक प्रयोग किया है। विरोधाभास जैसे विरोधमूलक अलंकारों के कुछ उदाहरण अवश्य मिल जाते हैं परन्तु उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, आदि साम्यमूलक अलंकारों की तुलना में इनकी संख्या नगण्य है। साम्यमूलक अलंकारों का विशेष प्रयोग गोविन्द गिल्ला भाई ने अपनी शृंगार-कविता में ही किया है। एक छंद यहां देखा जा सकता है-

ओपत अरुन ओंठ राधिका ललाम तेरे,
सौतिन के चित्त मांहि खूब हरकत है।
वामें दमकत दंत वर्णिका वलित श्याम,
सुखमा समूह सोय वेश बरकत है।
गोविंद कहत ताकी उपमा अभूत लसें,
आइ अभिराम मेरे चित्त सरकत है।
मंगल ते मंद कढ़े मंजुला मयूख कैधों,
मानिक ते मानहु मरीचि मरकत है।[1]

इसी प्रकार 'नैन मंजरी', 'पयोधर पच्चीसी', 'राधा मुख षोडशी' आदि रचनाओं में कवि ने नैन, पयोधर, मुख आदि के वर्णनों में रूपक आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। परन्तु साम्यमूलक अलंकारों में सर्वत्र अप्रस्तुत योजना परंपरानुसारी ही है।[2] इसी प्रकार श्लेष चंद्रिका में राजा शत्रु, सागर दीन, शंकर, विष्णु, नैन बान, बालक, कुकवि आदि विषयक श्लेष अलंकार के प्रयोग भी मौलिक नहीं कहे जा सकते।[3] रीतिकालीन कवियों की परंपरा में केशों के लिए मखतूल,[4] मांग के लिए मेघमालन में कपांत[5] तथा भृकुटी के लिए चाप[6] आदि अप्रस्तुत विधान परंपरानुसारी ही कहा जायेगा। करतल वर्णन का एक छंद यहां देखा जा सकता है-

---

१- समस्यापूर्ति प्रदीप, ह०प्र०सं०१६२, पृ०१७ छं०४५।

२- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ०३०५,३०८,३११ छं०१, २, ७, १५।

३- श्लेष चंद्रिका, ह०प्र०सं० १५५, पृ०१७२, १६७, १६४, १२३, १०७।

४- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ०१४६ शिखनख चंद्रिका, छं०६।

५- वही, पृ०१५०, वही, छं०११।

६- वही, पृ०१५४ वही, छं०२२।

कोऊ कहे कंत मन मोहबे कों मंत्र यह,
करतल कोमल पै विधि ने बनाये हैं ।
कोऊ कहे कंजन पै मनमथ माकरी ने,
मन मखी ग्राहिबे कों जाल कों बिछाये हैं ।
ऐसें अनुवाद करि राधा कर रेखन की
उपमा अनेक विधि बुध ने बनाये हैं ।
गोविंद पै मेरे जान कामदेव कोविद ने,
लिखि कोक कारिका सो विमल विभाये हैं ।[1]

प्रस्तुत छंद में कवि ने राधा की करतल रेखाओं का जिन अप्रस्तुतों के माध्यम से वर्णन किया है वे निश्चित ही सुन्दर और उचित हैं परन्तु उन्हें भी नितांत मौलिक नहीं कहा जा सकता । अत: यह कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने प्रधानत: साम्यमूलक अलंकारों का ही प्रयोग किया है, साथ ही उनमें अप्रस्तुत विधान भी मुख्यत: परंपरा प्राप्त ही है । उपमा, रूपक आदि साम्यमूलक अलंकारों में ही नहीं जिनमें साम्य वाच्य होता है, वरन् व्यतिरेक, अपह्नुति, संदेह आदि अलंकारों भी जिनमें साम्य ध्वनित होता है, अप्रस्तुत योजना परंपरानुगामी ही है । संदेह का एक उदाहरण यहाँ देखा जा सकता है-

शोभा सरवर माँहि सुभग सरोज उभै,
विकसी विशाल वर पुरन प्रभात है ।
कैधौं छवि सागर के मीन मनभाय महा,
उभय अनूप आज ओपै अवदात है ।
कैधौं काम भूपति के वाजिशाला वदन में,
तरल तुरंग उभै रुचिर लखात हैं ।
कैधौं कवि गोविंद ये राधिका के रंग भरे,
लोचन रसाल उभै सुन्दर सुहात हैं ।[2]

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ०२०६, २१०, राधा रूपमंजरी, छं०३१

२- वही, पृ०३३४, नैन मंजरी छं०७२ ।

गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य में अलंकार-प्रयोग के अध्ययन के प्रसंग में यह तथ्य और ज्ञातव्य है कि अप्रस्तुत योजना परंपरानुसार होने के साथ साथ व्याप्ति की दृष्टि से अत्यंत सीमित है। आशय यह कि परंपरा प्राप्त जिन अप्रस्तुतों का कवि ने विविध अलंकारों में प्रयोग किया है, उनकी संख्या तथा व्याप्ति अत्यंत सीमित है, परिणाम स्वरूप एक ही कल्पना या अप्रस्तुत योजना पुन: पुन: विभिन्न छंदों में विभिन्न अलंकारों के रूप में मिल जाती है। उदाहरणार्थ शिखनख चंद्रिका और 'राधा रूप मंजरी' में नायिका के विभिन्न अंगों के लिए समान अप्रस्तुत योजना देखी जा सकती है। 'पावस पयोनिधि' ग्रंथ की प्रथम तरंग में पावस के वर्णन में जिन अप्रस्तुतों का प्रयोग रूपक अलंकार के लिए किया गया है, प्राय: उन्हीं अप्रस्तुतों का प्रयोग द्वितीय तरंग में अपह्नुति अलंकार के लिए किया गया है तथा तृतीय और चतुर्थ तरंगों में उन्हीं अप्रस्तुतों का प्रयोग क्रमश: संदेह और श्लेष अलंकारों के लिए किया गया है। पावस प्रस्तुत के लिए कृष्ण अप्रस्तुत के प्रयोग की एक एक पंक्ति यहां देखी जा सकती है

रूपक - धुरवा धसान लसैं बार घुघरारे पुनि,
बिजुरी बसन पीत ओपत अपारे हैं।[१]

अपह्नुति - धुरवा धसान ये न बार घुघरारे लसैं,
बिजुरी विभाय ये न पीतपट राजे हैं।[२]

संदेह - धुरवा धसान चंहु ओर ये सुहाय कैधौं,
विलसै विशाल येहि बार घुघरारे हैं।
चंचला चमक कैधौं छन छन में सुहात कैधौं,
पीयरेसुपटन की परमा पसारे हैं।[३]

इन पंक्तियों में अप्रस्तुत योजना की समानता के साथ साथ शब्दों की समानता भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

१- पावस पयोनिधि, ह०प्र०सं० १५५, पृ०२१४ छं०४।

२- वही, पृ०२२६, छं० ५६।

३- वही, पृ०२३२, छं० ७९।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने रीति कवियों की सामान्य परंपरा में स्वीकृत प्राय: सभी अलंकारों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। परंतु इनकी विशेष रुचि एक ओर कष्टसाध्य क्लिष्ट एवं चमत्कारपूर्ण अलंकारों के प्रयोग में दृष्टिगोचर होती है, दूसरी ओर साम्यमूलक अलंकारों का इन्होंने विशेष प्रयोग भी किया है। परन्तु इनका अलंकार-प्रयोग शास्त्रीय दृष्टि से निर्दोष होते हुए भी अप्रस्तुत योजना में विशेष रूप से सुनिश्चित एवं सीमित होने के साथ साथ बड़ा स्पष्ट भी है, जिससे जहां एक ओर अलंकार और इसका प्रयोग अपने आप ही स्पष्ट हो जाता है, तो दूसरी ओर उनके काव्य में अलंकार-ध्वनि की सभी संभावनाओं को समाप्त कर देता है। यदि अलंकार ध्वनि का अभाव इनकी काव्य-कला की एक कमी है तो अलंकार-प्रयोग की स्पष्टता इनकी काव्य-कला की एक उपलब्धि मानी जा सकती है। पुनरुक्ति, गोविन्द गिल्ला भाई के समूचे काव्यत्व की एक ऐसी विशेषता है जो इनके अलंकार-प्रयोग में भी दृष्टिगोचर होती है। परंतु छंदों के निर्दोष प्रयोगों के समान ही अलंकारों का निर्दोष प्रयोग गोविन्द गिल्ला भाई की एक बड़ी उपलब्धि है।

भाषा प्रयोग

काव्य-कला मूलत: भाषा की कला है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी कला को रंग आदि के माध्यम से अभिव्यक्त करता है उसी प्रकार कवि अपनी कला को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। अत: किसी कवि की काव्यकला की उत्कृष्टता का आधार स्वभावत: काव्य-कला के मूलभूत माध्यम भाषा पर कवि के अधिकार पर भी बहुत कुछ निर्भर रहती है। इसीलिए भाषा से निरपेक्ष काव्य-कला का मूल्यांकन संभव नहीं हो सकता।

गोविन्द गिल्ला भाई की भाषा और उसके प्रयोग के विषय में विचार करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि गुजरात में हिन्दी भाषा की परंपरा और उसके साहित्य में प्रयुक्त रूप के विषय में भी विचार कर लिया जाय।

पहले विचार किया जा चुका है कि गुजरात और गुजराती भाषा हिन्दी भाषी प्रदेश और हिन्दी भाषा के साथ विशेष रूप से निकट होने के कारण विशेष रूप से समान भी है, जिसके कारण गुजरात में उसी समय से हिन्दी-साहित्य-सृजन की परम्परा मिलती है जब से वह हिन्दी भाषी प्रान्तों में मिलती है[१]। परन्तु गुजरात और गुजराती भाषा पश्चिमी हिन्दी भाषी प्रदेश और हिन्दी की पश्चिमी बोलियों के अधिक निकट होने के कारण विशेष रूप से उनके समान है। परिणाम स्वरूप गुजरात में जो भी हिन्दी साहित्य लिखा गया है वह ब्रजभाषा, खड़ी बोली, और डिंगल में ही प्रधानत: मिलता है, अवधी आदि पूर्वी बोलियों में नहीं। वैसे गुजरात में तुलसी कृत रामायण का प्रारंभ से ही बड़ा प्रचार मिलता है, फलस्वरूप उसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां आज भी गुजरात में अनेक स्थानों पर मिलती हैं तथा आज भी अनेक स्थानों पर रामायण प्रचार समिति तथा रामायण पाठशाला मिलती हैं। इतना ही नहीं, रामायण का प्रभाव गुजरात के अनेक हिन्दी कवियों पर भी देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ मूलदास नामक कवि ने रामायण की चाल पर[२] और उसी के प्रभाव के कारण 'वीरायण' नामक एक जैन प्रबन्ध काव्य लिखा है, परन्तु उसकी भाषा भी प्रधानत: ब्रजभाषा ही है। फिर भी रामायण के प्रभाव के कारण यत्र-तत्र चौपाइयों के अंत में अवधी की कुछ झलक दृष्टिगोचर हो जाती है। कुछ पंक्तियां यहां वीरायण से उद्धृत की जा रही हैं :

वर्धमान सुने बात हमारी। तव मुख दिख पितु मात सुखारी।
राज लक्ष्मि भंडार भरे हैं। स्वजन सबहि अनुकूल विचरे हैं।
यह संसार सकल सुखदाता। तव मुख निरखत लागत शाता।
सब सुकृत फल सुत सुख प्यारा। बिनु सुत भवन सदा अंधियारा[३]।

१- विशेष विवेचन के लिए देखिए : अध्याय द्वितीय।
२- तुलनीय है : वीरायण, प्रस्तावना, पृ० ७।
३- ,, : वही, पृ० २०३ क्रं० २२२, २२३।

आशय यह कि गुजरात में तुलसी-कृत रामायण का कुछ प्रभाव ही मिलता है वैसे पूर्वी हिन्दी की बोलियों में यहां साहित्य नहीं लिखा गया । केवल ब्रजभाषा, खड़ी बोली और डिंगल में हिन्दी साहित्य मिलता है ।

१३वीं १४वीं शताब्दी में जो कुछ गुजरात में हिन्दी साहित्य लिखा गया है, वह प्रधानत: मुसलमान सूफी संतों द्वारा लिखित होने के कारण मुख्यत: खड़ी बोली में ही मिलता है[1] जिसे परवर्ती मुसलमान कवियों ने गुजरी या गुज्जरी भाषा नाम से अभिहित किया है, दक्षिण भारत के मुसलमान कवियों ने भी अपनी भाषा को हिन्दी, हिन्दवी, दक्खिनी के साथ साथ गूजरी भी कहा है ।[2]

गुजरात के प्रसिद्ध मुसलमान हिन्दी कवि वली फैयाज ने अपने ग्रंथ 'सहादत नामा' या 'महफिले गम' में अपनी भाषा को 'रेक्ता' या 'रेख्ता' कहा है।[3] उनकी कुछ पंक्तियां भी यहां देखी जा सकती हैं :

कि कई कई साहबां यूं कह गये हैं ।
न इसकी गर्द को हम पहुंचते हैं ।
खुसुन जो वली फैयाज नाजिम
कहा इस तरह से हंगामाए गम ।[4]

हिन्दी भाषी प्रदेशों के समान ही गुजरात के संत-कवियों ने भी एक प्रकार की मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है जिसे कुछ विद्वानों ने सधुक्कड़ी भाषा का नाम भी दिया है,[5] तथा जिसके मूल में खड़ी बोली ही प्रतीत होती है । गुजरात के अनेक संत-कवियों ने ब्रजभाषा का भी प्रयोग किया है परन्तु प्रधान रूप से इन कवियों की भाषा को मिश्रित भाषा - जिसके मूल में खड़ी बोली है - कहा जा सकता है । संत कवि अखा की कुछ पंक्तियां यहां द्रष्टव्य हैं :

१- देखिए : परिशिष्ट : द्वितीय 'अ'।

२- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य - सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ५५७ ।

३- देखिए : हिन्दी विभाग, हस्तलिखित पुस्तक संग्रह, उर्दू प्रतियां ।

४- वही ।

५-तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७२ ।

क्या जाने लोका काला रे ।
घेनम्थी सो लाल गुलाला रे ।
क्या जाने लोका काला रे ।
मोहे पियुं सेजुं पर मिलिया रे ।
तबकी बहोत में रलिया रे ।
उम्मी सो रस उजलिया रे ।[१]

इस समय अनेक जैन कवियों ने भी अनेक काव्य-ग्रंथ लिखे हैं, परन्तु उनकी भाषा पर अपभ्रंश के अधिक प्रभाव के कारण उसे गुजरात के विद्वानों द्वारा जुनी गुजराती और हिन्दी के विद्वानों के द्वारा प्राचीन हिन्दी कही गयी है, जब तक विशुद्ध भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उन रचनाओं का अध्ययन न किया जाय तब तक उनकी भाषा के विषय में किसी प्रकार का निर्णय नहीं लिया जा सकता है। परन्तु इतना निश्चित है कि जैन कवियों ने प्राचीनता के आग्रह के कारण अपनी रचनाओं में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जिस पर अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट है। परवर्तीकाल में हिन्दी में केवल डिंगल काव्य परंपरा ही ऐसी है जिसमें प्राचीनता का वही आग्रह और वही अपभ्रंश की छाया दृष्टिगोचर होती है, जो गुजरात के प्राचीन जैन कवियों तथा हिन्दी के चारण कवियों में समान रूप से मिलती है। गुजरात में राजस्थान से अनेक चारण-कुल बहुत पहले ही आ गये थे, और गुजरात तथा सौराष्ट्र में अनेक रजवाडो में सुस्थापित हो गये थे। इन कवियों ने गुजरात में डिंगल-काव्य-परम्परा की न केवल नींव डाली परंतु उसे आधुनिक काल तक अक्षुण्ण बनाये रखा।[२] गुजरात के प्रसिद्ध चारण कवि ईसर बारोट की हरिरस नामक रचना में से कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जा रही हैं :

पाले पखवार केला प्रहलाद
सुण्यो तें य सेवक तारण साद ।
बांधे तैंय वार केता वलराव ।
वगोह्य दाणव कीध क्वाय ।[३]

१- अप्रसिद्ध अक्षय वाणी, श्री भावान जी महाराज, पृ० १११ ।
२- तुलनीय है : चारण अने चारणी साहित्य - झवेर चंद मेघाणी ।
३- हरिरस - सं० पींगलशी पाताभाई, पृ० ३३, छं० ३२ ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात के हिन्दी कवियों ने पश्चिमी हिन्दी की प्रधान बोलियों का ही विशेष प्रयोग किया है। परन्तु यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार मध्यकाल में हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली, डिंगल, अवधी, मैथिली आदि कई बोलियों का प्रयोग मिलता है परन्तु जो स्थान ब्रजभाषा का था वह अन्य किसी बोली का नहीं था । उसी प्रकार गुजरात में भी यद्यपि खड़ी बोली और डिंगल में हिन्दी-साहित्य मिलता है परन्तु जो स्थान यहां ब्रजभाषा का था वह अन्य किसी का नहीं । भक्ति काल के प्रारम्भ से ही ब्रजभाषा ने जो साहित्य के क्षेत्र में प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था तथा उसका जो प्रभाव हिन्दी भाषी क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है वही प्रभाव एवं प्रभुत्व गुजरात में भी उसी समय से मिलने लगता है । आशय यह कि जिस प्रकार हिन्दी भाषी प्रदेश में ब्रजभाषा की प्रधान परंपरा के प्रारंभ होने से पूर्व अर्थात् ब्रजभाषा के प्रकर्ष काल, भक्ति एवं रीतिकाल से पूर्व, खड़ी बोली, डिंगल आदि की छुटपुट परंपरा मिलती है, उसी प्रकार गुजरात में भी भक्ति-काल से पूर्व खड़ी बोली आदि की परंपरा मिलती है। परन्तु ब्रजभाषा के प्रकर्ष काल में हिन्दी-भाषी प्रदेश के समान ही गुजरात में भी खड़ी बोली और डिंगल की परंपराएं समाप्त तो नहीं होती परन्तु क्षीण अवश्य हो जाती हैं । भक्ति रीतिकाल में गुजरात में, हिन्दी भाषी प्रदेश के समान, ब्रजभाषा का प्रयोग केवल सगुणोपासक भक्त कवियों एवं रीति कवियों द्वारा ही नहीं हुआ है, परन्तु निरगुणिया संत कवियों, सूफियों और भाट चारणों द्वारा भी हुआ है । आधुनिक काल में गुजरात में क्रमशः खड़ी बोली हिन्दी की अन्य बोलियों का स्थान लेती जा रही है, जो हिन्दी-भाषी प्रदेश के समान ही है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि गुजरात की हिन्दी-काव्य-परम्परा की भाषायी स्थिति प्रारम्भ से ही हिन्दी भाषी प्रदेश के समान और समानान्तर मिलती है ।

पहले विचार किया जा चुका है कि ऐतिहासिक दृष्टि से गोविन्द गिल्ला भाई हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की परिसीमा में ही आते हैं। भारतेन्दु और द्विवेदी-युग को आधुनिक-काल का प्रथम और द्वितीय उत्थान कहने का तात्पर्य

यही प्रतीत होता है कि ये आधुनिक काल न हो कर रीतिकाल और आधुनिक काल के मध्यवर्ती संक्रमण काल हैं/ क्योंकि इन युगों में रीतिकालीन अनेक प्रवृत्तियां जहां अनेक नवीन प्रवृत्तियों को स्थान दे रही थीं, वहीं अनेक प्राचीन प्रवृत्तियां पूर्ववत् साहित्य में वर्तमान थीं । इस युग में हिन्दी साहित्य ब्रजभाषा को त्याग कर खड़ी बोली को साहित्य के एक मात्र माध्यम के रूप में स्वीकृत करने जा रहा था, परिणाम स्वरूप ब्रजभाषा का प्रचलन धीरे धीरे सीमित होने लगा था, और खड़ी बोली का प्रयोग गद्य के साथ साथ पद्य में भी होने लगा था । परन्तु इस युग में काव्य की भाषा प्रधान रूप से ब्रज भाषा ही थी तथा गद्य की भाषा खड़ी बोली थी/ गोविन्द गिल्ला भाई उन्हीं कवियों की पंक्ति में आते हैं जिन्होंने ब्रज भाषा का ही प्रयोग अपनी काव्य-कृतियों में किया है । आशय यह कि जिस युग में गोविन्द गिल्ला भाई आते हैं उसमें ब्रजभाषा का प्रयोग पद्य और खड़ी बोली का प्रयोग गद्य साहित्य के लिए होता था ।

गोविन्द गिल्ला भाई के साहित्य में उनके युग की उक्त विशेषता न केवल प्रतिबिम्बित होती है, वरन् वे इसके विषय में पूर्णत: जागरूक भी थे/ उन्होंने एक स्थान पर लिखा भी है कि :

खडि बोली के वचन कों हिन्दी कोऊ कहाय ।
गद्य ग्रंथ तामें लिखत सकल सुबुद्धि सदाय ।
पद्य रचत पंडित सबै ब्रजभाषा के माँहि ।
ब्रजभाषा बिन काव्य की शोभा शोहत नाँहि[१] ।

गोविन्द गिल्ला भाई के भाषा प्रयोगों के अध्ययन से पूर्व यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि आधुनिक काल में अपने देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्यों में जिस भाषादर्श का निर्वाह साहित्यकार कर रहे हैं, वह प्राचीन काल के साहित्यों में नहीं दिखायी देता । आशय यह कि आजकल जिस प्रकार साहित्यकार

१- गोविन्द हजारा, ह०प्र०सं० २०३, पृ० २, ३ छं० १४, १५ ।

अपनी भाषा की व्याकरणिक परिशुद्धता के विषय में ही नहीं, वरन् उसके निजी शब्दकोश के विषय में जागरूक है, उस प्रकार मध्यकालीन साहित्यकार नहीं था। आधुनिक हिन्दी में संस्कृत का शब्दकोश ही सामान्यत: स्वीकृत किया जाता है जबकि मध्यकालीन हिन्दी में संस्कृत के साथ साथ प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी आदि के शब्द तो सामान्यत: स्वीकृत किये ही जाते थे, स्थानीय बोलियों और प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी आवश्यकतानुसार ग्रहण किये जाते थे। इतना ही नहीं, वरन् एक ही छंद के विभिन्न पादों में विभिन्न भाषाओं के वाक्य या वाक्यांशों के प्रयोग ~~[illegible]~~ की एक विशेष शैली भी मिलती है, जिसे भोजराज ने भाषा चित्रकाव्य संज्ञा दी है[१] तथा हिन्दी में भी इस शैली का प्रयोग अनेक कवियों ने किया है।[२]

आशय यह कि मध्यकालीन हिन्दी कवि का भाषादर्श आज के कवि के भाषादर्श से अनेक दृष्टियों से भिन्न था। इसीलिए चंदबरदाई जहां, 'षडभाषा पुरानं च कुरानंकथितंमया'[३] के कथन में अपनी मिश्रित भाषा के स्वरूप का सगर्व परिचय देते हैं, वही भिखारीदास मिश्रित भाषा के प्रयोग के कारण 'तुलसी और गंग को कवियों का सरदार कहते हैं।

तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार।[४]

साथ ही ब्रजभाषा के ज्ञान के लिए उन्होंने ब्रज वास की आवश्यकता न बता, उसकी मिश्रित प्रकृति का वर्णन इस प्रकार किया है :

ब्रज मागधी मिलै अमर नाग यवन भाषानि।
सहज पारसी हू मिलै षट बिधि कहत बखानि।[५]

१- सरस्वती कंठाभरण - भोजराज, पृ० १०६।

२- दृष्टव्य है, हिन्दी साहित्य में भाषा चित्र काव्य (अप्रकाशित शोध प्रबंध) वी. विद्यासागर उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, १९६१.

३- पृथ्वीराज रासो - चंदवरदाई, म्रू १।३६।

४- काव्य निर्णय- भिखारीदास १।१७।

५- वही १।१५।

रीतिकालीन कवियों की भाषा के अध्ययन से भी यही सिद्ध होता है कि उन्हें मिश्रित भाषा ही काव्य भाषा के रूप में स्वीकृत थी[१]। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भिखारीदास की उक्त उक्ति को कोई दो सौ वर्षों की काव्य-परम्परा के पर्यालोचन के उपरान्त, काव्य भाषा के स्वरूप का यथार्थ निर्णय माना है।[२] रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा में न केवल हिन्दी की विभिन्न बोलियों के शब्दों का बेरोकटोक प्रयोग किया था, वरन् उनके अनेक व्याकरणिक प्रयोग भी ब्रजभाषा में प्रयुक्त किये थे[३]। आशय यह कि ब्रजभाषा जो भक्तिकाल से आधुनिक काल तक काव्य की सामान्य भाषा रही है, भक्तिकाल से ही मिश्रित रूप में प्रयुक्त होती आ रही है[४]। हिन्दी में आदि काल से लेकर द्विवेदी युग तक काव्य-भाषा में मिश्रित काव्य भाषा के प्रयोग की परम्परा ही मिलती है, द्विवेदी युग में प्रथम बार शुद्ध भाषा प्रयोग का आग्रह मिलता है।

भारतेन्दु युग में उत्पन्न होकर और द्विवेदी युग में प्रौढ़ता प्राप्त करने वाले गोविन्द गिल्ला भाई अपने युग के अनेक कवियों के समान, रीतिकालीन काव्य परम्परा से अधिक प्रभावित होने के कारण, अपनी काव्य कृतियों में मिश्रित ब्रजभाषा का ही प्रयोग करते हैं। सम्भवत: केवल ब्रजभाषा में ही काव्य-रचना करने के कारण तथा द्विवेदी जी के प्रभाव क्षेत्र हिन्दी भाषी प्रदेश से दूर होने के कारण गोविन्द गिल्ला भाई आचार्य द्विवेदी के शुद्ध भाषादर्श को स्वीकृत नहीं कर सके। परन्तु इतना निश्चित है कि वे अपने युग की भाषा विषयक जागरूकता से परिचित अवश्य थे। इसीलिए उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र कुछ भाषा विज्ञान सम्मत उल्लेख मिलते हैं[५] तथा हिन्दी व्याकरण और हिन्दी गुजराती व्याकरण की तुलना का अपूर्व प्रयास भी मिलता है[६]। संस्कृत और ब्रजभाषा

१- घनानंद ग्रंथावली भूमिका - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ४८।

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २३१।

३- वही, पृ० २३२।

४- कविवर बिहारी - जगन्नाथदास रत्नाकर, पृ० ४६।

५- तुलनीय है : गोविन्द हजारा ह०प्र०सं०२०३ पृ० २, ३ आदि।

६- ,, : गोविन्द गद्य साहित्य संग्रह ह०प्र०सं०२०५, पृ० ४ आदि।

के सम्बन्ध के विषय में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि :

भाषा शाखा कहत हैं देख संस्कृत मूल ।
मूल रहत है बीच में शाखा तो फलफूल।[१]

अन्यत्र उन्होंने देश भेद के अनुसार भाषा भेद का उल्लेख किया है परन्तु हिन्दी को उन्होंने अखिल भारतीय भाषा माना है :

देश परतवे मनुष्य की भाषा होत अनेक ।
तामे हिन्दुस्थान की हिन्दी भाषा एक ।[२]

हिन्दी भाषा की विभिन्न बोलियों के विषय में उन्हें कोई विशेष जानकारी नहीं थी इसीलिए उन्होंने हिन्दी भाषा के भेद वर्णन में ब्रजभाषा और खड़ी बोली का वर्णन किया है ।[३] उर्दू के विषय में उन्होंने जो लिखा है उससे यही सिद्ध होता है कि वे उसे हिन्दी की एक विशेष शैली मानते थे, जिसमें अरबी फारसी के शब्दों का विशेष प्रयोग होता है[४] जो उर्दू विषयक सभी सामान्य धारणाओं की तुलना में विशेष रूप से भाषा-विज्ञान संमत है । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई अपने युग के अनुरूप अनेक भाषा वैज्ञानिक तत्वों से परिचित थे, परन्तु अपने काव्यादर्श के समान ही उन्होंने अपनी काव्य-भाषा के प्रयोग में अपने आदर्श कवि रीति कवियों के भाषा - प्रयोगों का ही अनुसरण किया है, जिनकी मिश्रित ब्रजभाषा सर्व विदित है ।[५] रीतिकालीन कवियों की ब्रजभाषा में, हिन्दी की कई बोलियों के अनेक व्याकरणिक तत्व तथा शब्द आदि मिलते हैं ।[६] जो रीतिमुक्त कवियों की भाषा में सत्य नहीं है ।[७] परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई का भाषा-ज्ञान

१- लघु डायरी ह०प्र०सं० पृ० १ ।

२- गोविन्द हजारा ह०प्र०सं० २०३ पृ० २ छं० १० ।

३- वही पृ० २, ३ छं० १५, १६ ।

४- वही ।

५- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २३० से २३२ ।

६- घनानंद ग्रंथावली, भूमिका - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ४८ ।

७- वही, पृ० ४६ ।

बहुत कुछ रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं के अध्ययन पर आधारित था, अत: उनकी ब्रजभाषा में हिन्दी की उन बोलियों का मिश्रण मिल जाता है, जो रीतिबद्ध कवियों की ब्रज भाषा में मिलता है। इसके अतिरिक्त गुजराती का प्रभाव भी इनकी ब्रजभाषा में मिलता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई की ब्रजभाषा रीतिबद्ध कवियों की मिश्रित ब्रजभाषा के आदर्श का ही अनुगमन करती है, परन्तु उसमें गुजराती का अतिरिक्त प्रभाव या मिश्रण भी विशेष रूप से मिलता है। अपने युग के अनुरूप वे भाषा, और उसके व्याकरण के विषय में तो जागरूक थे ही, साथ ही गद्य के लिए खड़ी बोली, और पद्य के लिए ब्रजभाषा के प्रयोग की परम्परा से परिचित ही नहीं थे, वरन् उसका उन्होंने स्वयं पालन भी किया है। आशय यह कि जितना भी उन्होंने हिन्दी गद्य लिखा है, प्रधानत: वह खड़ी बोली में ही है, तथा समूचा पद्य ब्रजभाषा में।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गोविन्द गिल्ला भाई हिन्दी की बोलियों में से केवल ब्रजभाषा और खड़ी बोली ही से विशेष रूप से परिचित थे, और उन्हीं का प्रयोग उनकी रचनाओं में मिलता है। परन्तु इन दोनों बोलियों की सभी विभेदक विशेषताओं से वे पूर्णत: परिचित नहीं लगते, इसीलिए उनकी ब्रजभाषा में खड़ी बोली और खड़ी बोली में ब्रजभाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। रीतिकालीन अनेक कवियों ने अपनी ब्रजभाषा में कहीं अलंकार विशेष के आग्रह आदि के कारण खड़ी बोली का मिश्रण किया है, जैसे ग्वाल की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है :

> आवै परवाना तब चलै ना बहाना, तातै
> नेकी कर जाना फेर आना है न जाना है।

परन्तु ऐसे प्रयोग संज्ञा के आकारान्त प्रयोग या क्रियापद के आकारान्त प्रयोग तक ही सीमित हैं, खड़ी बोली के परसर्ग आदि का प्रयोग रीतिकालीन कवियों

की ब्रजभाषा में नहीं मिलता। गोविन्द गिल्ला भाई की ब्रजभाषा में अलंकार आदि के आग्रह आदि के कारण संज्ञापदों और क्रियापदों का आकारान्त प्रयोग तो मिलता ही है,[१] वैसे भी खड़ी बोली के अनेक तत्वों का सहज सम्मिश्रण भी दृष्टिगोचर होता है। कुछ उदाहरण यहां देखे जा सकते हैं :

(१) चावल का परसाद[२]

भरोसा एक सिद्धि का सुहात सदा।[३]

ममता से ज्ञान बिखरात है।[४]

मुझ पै अनुकूल है।[५]

(२) बुद्धि कों बढाता और विघ्न कों बिलाता है।[६]

एक - - - - - - छूट गया है।[७]

कुलन कों हेरना, तोयद कों [९]टेरना, चंद सामे हेरना।[८]

(३) बांह धरी गल एक दूजा पर।

उक्त उदाहरणों में क्रमश: परसर्ग, क्रियापद और संज्ञा पद में खड़ी बोली का प्रभाव देखा जा सकता है।

जिस प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई की कविता की ब्रजभाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव परिलक्षित होता है, उसी प्रकार गद्य की खड़ी बोली पर ब्रजभाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। खड़ी बोली गद्य पर ब्रजभाषा का

१- तुलनीय है : गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २२ छं० १, २ पृ० २६ छं० १०, ११ आदि।

२- वही ,पृ०६ छं० ७।

३- वही पृ० ७, छं० २।

४- वही, पृ० १०८ छं० १६८।

५-,वही,पृ० १३ छं० ५।

६- वही,पृ०२३ छं० १।

७- गोविन्द हजारा ह०प्र०सं० २०३ पृ० ४४ छं० ७६।

८- गोविन्द ग्रंथमाला पृ० ९९ छं० १७२, १७३।

९- वही, पृ० १४ छं० ५।

प्रभाव कहीं कहीं, विशेष रूप से अपने हिन्दी काव्य ग्रंथों की हिन्दी टीकाओं में, इतना अधिक है कि वह रीतिकालीन कवियों की गद्य टीकाओं की ब्रजभाषा जैसा प्रतीत होता है। कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जा रही हैं :

> सूर्य जैसे किरण तैं जल कों ऐंची लेत है ....
> मृगनयनी स्त्री संग सदाय क्रीड़ा करत हो [१] .... मकरंद ले कें
> भ्रमर राजी होत है।

> और साधु पुरुषों कों जैसे शंख निर्मल लागत है, तथा भोगी
> पुरुषों कों पारिजात पुष्प जैसे सुखदायक लागत है, ऐसें चौदहों
> रत्न नायका के नेत्र में दिखात है।[२]

परन्तु टीकाओं के अतिरिक्त अपने ग्रंथों में जहां उन्होंने गद्य का प्रयोग किया है वहां वह ब्रजभाषा से इतना अधिक प्रभावित नहीं है[३]। लेकिन कुछ प्रभाव अवश्य है। निम्नलिखित उद्धरण से इस प्रभाव का अनुपात अनुमानित किया जा सकता है :

> "हिन्दी भाषा में हमने आज तक में छोटे बड़े सब मिल कें २४ चौबीस
> ग्रंथ बनाय कें तैयार किये हैं, उनमें से चौदह ग्रंथ प्रथम यह भाग में छप
> गये हैं, और शेष रहे वाके नाम नीचे लिखते हैं/यह सिवाय कितनेक
> अपुर्ण है उनका नाम नहि लिखा है। वह जो पूर्ण हो जायगा तो
> उनका नाम दुसरे भाग में प्रगट किया जायगा।"[४]

प्रस्तुत उद्धरण में ब्रजभाषा का जो भी प्रभाव है स्पष्ट हो जाता है। गुजराती का प्रभाव भी जो इनके गद्य में दृष्टिगोचर होता है वह इससे स्पष्ट नहीं होता। केवल "छोटे बड़े" मुहावरे के प्रयोग में ही कुछ गुजराती का प्रभाव माना जा सकता है क्योंकि हिन्दी का मुहावरा 'बड़े छोटे' है। प्रस्तुत प्रयोग गुजराती के

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ३६६ छं० २५ की टीका।

२- वही पृ० ३०८ छं० ६ की टीका।

३- तुलनीय है : वही, उपोद्घात।

४- वही, पृ० २१, २२।

"नाना मोटा"का सीधा अनुवाद ही है। इस प्रकार का गुजराती प्रभाव उनकी खड़ी बोली में अन्यत्र भी मिलता है। उदाहरणार्थ गुजराती व्याकरण के अनुसार पास, दूर, नीचे, ऊपर आदि शब्द स्त्रीलिंग हैं अत: इनसे पूर्व आने वाले संबंध वाचक सर्वनाम या संज्ञाओं के साथ संबंध वाचक परसर्ग स्त्रीलिंग में ही आते हैं, जबकि हिन्दी में ये पुलिंग में आते हैं, गोविन्द गिल्ला भाई ने इनके प्रयोग में गुजराती व्याकरण के अनुसार हमारी पास, उसकी नीचे, आदि का ही प्रयोग किया है।[१] इतना ही नहीं 'ज्ञ' के गुजराती उच्चारण 'ग्न' का प्रभाव भी आज्ञा आदि शब्दों के सरलीकृत रूप 'आगना' आदि में देखा जा सकता है। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई की खड़ी बोली पर ब्रजभाषा के प्रभाव के साथ साथ गुजराती का भी प्रभाव है।

जिस प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई की खड़ी बोली पर ब्रजभाषा और गुजराती का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार उनकी ब्रजभाषा पर खड़ी बोली और गुजराती का प्रभाव है। परन्तु इतना निश्चित है कि गद्य की खड़ी बोली जितनी ब्रजभाषा से प्रभावित है उतनी पद्य की ब्रजभाषा खड़ी बोली से प्रभावित नहीं है। क्योंकि उनके समय तक खड़ी बोली का रूप सुनिश्चित नहीं हो पाया था, तथा ब्रजभाषा ही काव्य की प्रधान भाषा के रूप में स्वीकृत थी। अत: इस समय के अन्य कवियों की खड़ी बोली पर भी ब्रजभाषा का प्रभाव ब्रजभाषा पर खड़ी बोली के प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक देखने को मिलता है। गोविन्द गिल्ला भाई की ब्रजभाषा पर गुजराती का जो प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, उसे निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है। नीचे कुछ ऐसे गुजराती शब्द-प्रयोग दिये जा रहे हैं, जिनका प्रयोग हिन्दी में कुछ भिन्न रूप और अर्थ में होता है, जबकि उद्धृत पंक्तियों में उनका प्रयोग गुजराती के अनुसार ही है :

मोक्षपद <u>पामी</u> तुर्त <u>तापत्री</u> विडारे है।[१]

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २५ छं० ७।

अशुभ नाशाता औौर मंगल के दाता है[१]।
एक घरी नहि शुद्धि रहे अरु एक घरी बहु बुद्धि पग्यो है[२]।
प्रिय वदनार पतिव्रता धरनार पुनि[३]।
ममता मन मूके नहीं रखे आश अहनीश[४]।
हरिप्रिया हरखे में हरिफाई धरी है[५]।

इसके अतिरिक्त गुजराती के कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग भी इनकी ब्रजभाषा में मिलता है, जो अर्थ की दृष्टि से हिन्दी के वैसे ही शब्दों के समान हैं, परन्तु रूप की दृष्टि से हिन्दी शब्दों से भिन्न हैं। जैसे लोभी के लिए लोभिया[६], पक्षी या पंछी के लिए पंखी[७], टूटत के लिए तुटत[८], पके के लिए पकेल[९], आदि। इतना ही नहीं, वरन् गुजराती की अनेक व्याकरणिक विशेषताएं इनकी ब्रजभाषा में दृष्टिगोचर होती हैं, नीचे कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं :

एक हाथे शंख अरु[६] - - - - - - -(ब्रजभाषा के एक हाथ या एक हाथ में शंख अरु के लिए)

गोविंद गुहार कहै अधम उधार तेरो,
विरद विचार प्रभु मोहिको उधारो री[१०]।

धन जाकी पास सोइ कुलिन कहाय पुनि[११]।
अंध की समीप चारु आरसी को आनिये[१२]।

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २३ छं० २।
२- वही, पृ० ७६ छं० ११७।
३- वही, पृ० १२१ छं० २४१।
४- वही, पृ० १३२ छं० २७८।
५- वही, पृ० ३६६ छं० २५।
६- वही, पृ० ४ छं० ३।
७- वही, पृ० ६० छं० १४७।
८- वही, पृ० १०२ छं० १८३।
९- वही, पृ० १४ छं० ४।
१०- वही, पृ० २८ छं० १८।
११- वही, पृ० ६५ छं० ६८।
१२- वही, पृ० १२५ छं० २५६।

मन में मुभ आवत ।[१]
मंजुल मुखेन्दु केरी चंद्रिका प्रकास है ।[२]
चंद्रमा नें जीतिवे कों तेरो मुख बाल है ।[३]

गुजराती के कुछ ऐसे मुहावरों का प्रयोग भी इनकी ब्रजभाषा में मिलता है जिनके समान मुहावरे ब्रजभाषा में हैं परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने ब्रजभाषा के मुहावरों का प्रयोग न कर गुजराती मुहावरों का यथावत् अनुवाद कर दिया है । उदाहरणार्थ मुसीबत खड़ी करने के अर्थ में गुजराती मुहावरा 'उपाधि करवी' का अनुवाद 'उपाधि करना'[४] भाईयों में वैमनस्य उत्पन्न करने के लिए - "भातृ में भेद पढाना"[५], दुख मैंटने के लिए - "दुख भांगना"[६], आदि का प्रयोग मिलता है ।

अरबी फारसी के शब्द भारत की सभी भाषाओं में मिलते हैं परन्तु सभी भाषाओं में ये शब्द समान रूप से नहीं मिलते, और न ही इन शब्दों के प्रयोग की शैली ही सर्वत्र समान रूप से मिलती है । उदाहरणार्थ हिन्दी में अरबी फारसी शब्द के साथ समास रूप में या वैसे भी संस्कृत शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता, परन्तु ऐसा गुजराती में होता है । तदनुसार गोविन्द गिल्ला भाई ने अपनी ब्रजभाषा में अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग संस्कृत के शब्दों के साथ किया है ।[७]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने गद्य के लिए खड़ी बोली और पद्य के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया है । परन्तु दोनों भाषाओं में न केवल एक दूसरे का प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होता है परन्तु दोनों पर गुजराती का भी प्रभाव है । यह प्रभाव केवल शब्दकोश तक ही सीमित नहीं है, वरन् व्याकरणिक विशेषताओं और मुहावरों में भी देखने को मिलता है ।

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २०२ छं० १० ।
२- वही, पृ० २१४ छं० ४४ ।
३- वही, पृ० ३५३ छं० १८ ।
४- वही, पृ० ६६ छं० ७०,७१ ।
५- वही, पृ० ६६ छं० ७० ।
६- वही, पृ० ६७ छं० ७३ ।
७- तुलनीय है : वही, पृ० ६६, ७२, ४८, २० , गोविन्द हजारा ह०प्र०सं० २०३ पृ० १, २, ३५ ।

गोविन्द गिल्ला भाई के भाषा-प्रयोग के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि खड़ी बोली की अपेक्षा ब्रजभाषा पर उनका विशेष अधिकार था। रीतिबद्ध कवियों की मिश्रित ब्रजभाषा प्रयोग के आदर्श को स्वीकार करके काव्य रचना में प्रवृत्त होने वाले कवि से विशुद्ध भाषा प्रयोग की अपेक्षा ही नहीं की जा सकती, साथ ही अहिन्दी भाषी कवि होने के कारण तथा ब्रजभाषा क्षेत्र से दूर रहने के कारण गोविन्द गिल्ला भाई की भाषा में कुछ त्रुटिपूर्ण सर्वनाम, लिंग, वचन तथा क्रियापद आदि के प्रयोग भी मिल जाते हैं, नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं :

सर्वनाम -

मोहि हाथ गहिये।[१] "मेरौ हाथ गहिए" के लिए।

उनतें उपेन्द तोकों मनहीन जानि मेरो,
मन तोकों देत हों सो लीज्यो ऊर धरिकें।[२]
"तातें उपेन्द्र तोकों मनहीन जानि अपनौ मन तोकों दे हों सो लीजियो उर धरिकें" के लिए।

क्यों री हम धाम आये।[३] "क्यों रे हमारे धाम आये" के लिए।
रहियो .....मोहि अनुकूल है।[४] "रहियो मेरे अनुकूल है" के लिए।
ध्यान वा धरत।[५] "ध्यान वाको धरत" के लिए।
अराधे उन तापत्री टरत है।[६] "अराधे उनके तापत्रय टरत हैं" के लिए।

लिंग -

महिमा ये माधव को।[७] "महिमा ये माधव की" के लिए।
सुरभि न होत, भ्रमरी न होत।[८] "सुरभि न होती, भ्रमरी न होती" के लिए।

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० १० छं० ११।
२- वही पृ० ११ छं० १२।
३- वही, पृ० ११ छं० १३।
४- वही, पृ० १३ छं० ४।
५- वही, पृ० १५ छं० १।
६- वही, पृ० १५ छं० १।
७- वही, पृ० १५, छं० १। ८- वही, पृ० १६ छं० ३।

गंगा के तरंगा ।[१] "गंगा की तरंगा" के लिए ।
मेरी काटि अधजाला ।[२] "मेरौ काटि अधजाला" के लिए ।
कुकवि की काव्य ।[३] "कुकवि कौ काव्य" के लिए ।

वचन -

"चीर गोपि के हरैया ।[४] "चीर गोपिन के हरैया" के लिए ।
ब्रजवासि के बचैया ।[५] "ब्रजबासिन के बचैया" के लिए ।
पाय भजे ब्रषभान लली कौ ।[६] "पांय भजे ब्रषभान लली के" के लिए ।
सिन्धुर के चित्रन में भय उपजावन को ।[७] "सिन्धुर के चित्र में भय उपजावन कौं" के लिए ।
स्वातिन के बुन्द बिना ।[८] "स्वाति की बुंद बिना" के लिए ।

क्रियापद -

राम के चरन सेये मेटत मरन हैं ।[९] "राम के चरन सेये मिटत मरन हैं" के लिए
बांसुरी विभाय बिच युग्म अधरन कौ ।[१०] "बांसुरी विभात बिच युग्म अधरन के" के लिए ।
किन्तु लिये राधिका रे मन तेरी हरिके ।[११] "किन्तु लियो राधिका रे मन तेरो हरके" के लिए ।

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० १८ छं० ७ ।
२- वही, पृ० २६ छं० ११ ।
३- वही, पृ० ५५ छं० ४२ ।
४- वही, पृ० ८ छं० ५ ।
५- वही, पृ० ६ छं० ७ ।
६- वही, पृ० ११, छं० ३ ।
७- वही, पृ० ७० छं० ८२ ।
८- वही, पृ० ७५ छं० ६६ ।
९- वही, पृ० ५ छं० ५ ।
१०-वही, पृ० ६ छं० ६ ।
११-वही, पृ० ११ छं० १२ ।

को धरते । रावन क्यों मरते ।[१] "को धरती । रावन क्यों मरती" के लिए
देवी नांहि होते ।[२] "देवी नांहि होती " के लिए ।
हम तो निशिवासर, पांय भजे वृषभान लली को ।[३] "हम तो
निशिवासर, पांय भजें वृषभान लली के " के लिए'।

गुजरात में प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों तथा प्रकाशित ग्रंथों में भी हिन्दी की वर्तनी संबंधी अनेक त्रुटियां मिलती हैं, जो गोविन्द गिल्ला भाई की हस्तलिखित रचनाओं तथा प्रकाशित रचनाओं में भी थोड़ी बहुत मिलती हैं । ऐसी स्थिति में कुछ व्याकरणिक भूलों को वर्तनी की भूल भी कहा जा सकता है । परन्तु कौन सी भूल व्याकरण के अज्ञान के कारण हैं, और कौन सी वर्तनी के कारण हैं, निश्चित रूप से नहीं बताई जा सकती ।

कहीं कहीं एक ही शब्द दो रूपों में लिखा मिलता है, जैसे इष्ट, उर आदि ईष्ट, ऊर आदि के रूप में भी मिलते हैं । इसी प्रकार ब्रजभाषा के पूर्वकालिक कृदन्त जैसे उठि, करि, बैठि आदि जिन्हें रीतिकालीन कुछ कवियों ने उठ, कर, बैठ आदि रूपों में भी स्वीकृत किया है[४], गुजराती में उठी, करी, बैठी आदि के रूप में मिलते हैं । गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं में एक ओर भुलि गयी[५], लुटि लिये[६], बनिकें[७], निकासि[८], आदि रूप मिलते हैं तो दूसरी ओर लूटी[९], जीती[१०],

---

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ०२ क्रं० ५ ।
२- वही, पृ० ३ क्रं० ४ ।
३- वही, पृ० १२ क्रं० ३ ।
४- तुलनीय है : कविवर बिहारी - जगन्नाथ,दास रत्नाकर, पृ० ४८ ।
५- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ०१८२ क्रं० १०१ ।
६- वही ।
७- वही, पृ० १८२ क्रं० १०२ ।
८- वही पृ० ३०२ क्रं० २३ ।
९- वही पृ० १८२ क्रं० १०० ।
१०- वही ।

लखी,[१] मानी,[२] रही[३] आदि प्रयोग भी मिल जाते हैं । अत: यह कहना कि कौन सा रूप व्याकरण की भूल है और कौन सा रूप गुजराती के व्याकरण के अनुसार गुजराती की वर्तनी के प्रभाव के कारण है, असंभव है । इसी प्रकार 'है' और 'हैं' का विवेक सर्वत्र समान रूप से नहीं मिलता । कवि ने दोनों का अनेक स्थान पर उचित प्रयोग भी किया है, साथ ही अनेक स्थानों पर 'है' के स्थान पर 'हे' और 'हैं' के स्थान पर 'है'। मिल जाता है । इसका कारण गुजराती का 'छे' जो हिन्दी के 'है' और 'हैं' दोनों का अर्थ व्यंजित करता है प्रतीत होता है । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ब्रजभाषा या हिन्दी में 'है' और 'हैं' के भेद को जानते अवश्य थे/ परन्तु गुजराती के 'छे' के अभ्यास के कारण वे इस भेद के विषय में सदैव जागरूक नहीं रह सके ।

गोविन्द गिल्ला भाई की भाषा में सर्वनाम, लिंग, वचन तथा क्रियापदों के प्रयोगों में उल्लिखित त्रुटियों के अतिरिक्त शब्दों को तोड़ने मरोड़ने की प्रवृत्ति[४] भी मिलती है । रीतिकालीन कवियों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है,/ परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई में यह प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक संयमित है । शब्दों के द्वित्वीकरण और शब्द संकोचन की प्रवृत्ति तो केवल एक दो स्थानों पर ही देखने को मिलती है, परन्तु शब्द विस्तार अनेक स्थानों पर मिलता है,/ कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं :

तऊ[५] "तौ" के लिए ।
दुवार[६] "द्वार" के लिए ।
धियान[७] "ध्यान" के लिए ।
महातम[८] । 'महात्म्य" के लिए ।

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ६ छं० ७ ।
२- वही, पृ० ३६३ छं० १४ ।
३- वही पृ० ३६३ छं० १३ ।
४- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २३० ।
५- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २ छं० ४ ।
६- वही, पृ० ७ छं० ७ ।
७- वही, पृ० २ छं० ५ । ८- वही, पृ० ६ छं० १ ।

तरवेनी ।[१] 'त्रिवेनी' के लिए ।
निररोगी[२] 'निरोगी' के लिए ।
सरव[३] 'सर्व' के लिए ।
धरम ।[४] 'धर्म' के लिए ।

इस प्रकार से शब्द विस्तार सामान्यत: छंद पूर्ति या अलंकार विशेष के आग्रह के कारण मिलता है ।

तुक या अलंकार आदि के आग्रह के काररा अनेक स्थानों पर मिथ्या सादृश्य के आधार पर कुछ नवीन शब्द निर्माण की प्रवृत्ति भी गोविन्द गिल्ला भाई में देखने को मिलती है। जैसे टारवे कों से सादृश्य पर बढारवे कों,[५] सुखदायक के आधार पर प्रभायक,[६] रसीली के आधार पर 'हसीली', यशीली, बसीली,[७] गुमावे के आधार पर रहावे,[८] कीजिये के आधार पर हरीजिये, गहीजिये,[९] आदि प्रयोग मिल जाते हैं ।

ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रजभाषा में संस्कृत के तीन स, श, ष, के स्थान पर केवल एक ही 'स' रह गया है, साथ ही संस्कृत की ण, क्ष, आदि ध्वनि भी ब्रज भाषा में नहीं मिलती, यद्यपि रीतिकालीन कवियों ने यत्र-तत्र इनका प्रयोग किया है, परन्तु अधिकांश में स, श, ष के स्थान पर स, ण, के स्थान पर न क्ष के स्थान पर 'च्छ', या 'छ' नियमित रूप से मिलते हैं। परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई ने संस्कृत शब्दों में इस प्रकार के परिवर्तन बहुत ही कम किये हैं। अत: उनकी ब्रजभाषा में ब्रजभाषा की प्रकृति के विपरीत ये ध्वनियां मिल जाती हैं। उदाहरणार्थ उनकी कोई भी रचना देखी जा सकती है।

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ६ छं० ४ ।
२- वही, पृ० ६ छं० ६ ।
३- वही, पृ० १५ छं० ६ ।
४- वही, पृ० १५ छं० ७ ।
५- वही, पृ० ५ ।४ ।
६- वही, पृ० ५ छं० १ ।
७- वही, पृ० १२ छं० ९ ।
८- वही, पृ० ११८, छं० २३४ । ९- वही, पृ० १०४ छं० १८७ ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई का ब्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार नहीं था। इसका अंतिम प्रमाण यह माना जा सकता है कि उन्होंने ब्रजभाषा के मुहावरों का बिलकुल ही प्रयोग नहीं किया तथा इसके विपरीत कुछ ऐसे प्रयोग किये हैं जिन्हें ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप नहीं कहा जा सकता। जैसे तपस्या करने के अर्थ में ताप तपना,[१] मोह हो जाने के अर्थ में मोह मानना,[२] जगदीश के दर्शन के लिये जगदीश लखी,[३] मोक्ष देने के अर्थ में मोक्ष मिलवे[४] आदि/इसी प्रकार कारुन्य करैया,[५] भरोसा ओपत है,[६] आधार विभात है[७] आदि ऐसे प्रयोग हैं जिन्हें ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल नहीं कहा जा सकता/ इसी प्रकार कुछ विशिष्ट शब्दों का, जिनका प्रयोग ब्रजभाषा में किसी विशिष्ट अर्थ में ही होता था, कवि ने भिन्न अर्थ या प्रसंग में प्रयोग किया है। निम्नलिखित पंक्तियों में 'पिंड' शब्द का प्रयोग उचित नहीं कहा जा सकता :

> पिंड पै प्रभाय पीत वसन।[८]
> राधिका कन्हाई दोउ पिंड ह्वै प्रफुल्ल है।[९]

अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई का ब्रजभाषा पर वैसा अधिकार नहीं था, जैसा कि श्रेष्ठ कवि के लिए अपेक्षित होता है।

गोविन्द गिल्ला भाई के भाषा-प्रयोग में प्रदर्शित उक्त त्रुटियों के विषय में यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि उक्त सभी प्रकार की त्रुटियों में सर्वाधिक सामान्य त्रुटि वचन को लेकर है/ अन्य प्रकार की त्रुटियां सर्वत्र नहीं मिलती। ऊपर दिये

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ६ छं० २।
२- वही, पृ० ६ छं० ३।
३- वही, पृ० ६ छं० ७।
४- वही, पृ० ६ छं० १।
५- वही, पृ० ८ छं० ६।
६- वही, पृ० ७ छं० २।
७- वही, पृ० १२ छं० १।
८- वही, पृ० ६ छं० ६।
९- वही, पृ० १२ छं० ४।

गये उदाहरणों से यह स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि उनमें से अधिकांश गोविन्द ग्रंथमाला प्रथम भाग में से हैं, और मुख्यत: वे गोविन्द ग्रंथमाला की प्रारंभिक रचनाओं में से हैं। आशय यह कि ये सभी रचनाएं गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व - जीवन के प्रारंभिक समय की रचनाएं हैं। भाषा की दृष्टि से उनकी सभी रचनाएं दो वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं, एक संवत् १६२० से १६३७ तक की रचनाएं, दूसरी, संवत् १६४१ से संवत् १६७८ तक की रचनाएं। ऊपर जिन रचनाओं में से अधिकांश उदाहरण दिये गये हैं वे प्रथम काल की रचनाएं हैं, द्वितीय काल की रचनाओं में क्रमश: त्रुटियों का अनुपात घटता जाता है और भाषा में परिमार्जन और परिष्कार दृष्टिगोचर होने लगता है। निम्नलिखित दो छंदों की भाषा की तुलना से गोविन्द गिल्ला भाई की भाषा के क्रमिक विकास के विषय में कुछ अनुमान किया जा सकता है :

बिधि के स्वरूपे सदा विश्व कों बनात बर,
विष्णु के स्वरूपे सदा पालन करत हैं।
शंकर स्वरूपे सदा वाहिकों विलात पुनि,
चंद के स्वरूपे सदा पोषन धरत हैं।
सूर्य के स्वरूपे सदा करत प्रकाश शुभ,
वारिद स्वरूपे सदा भूमि ये परत हैं।
गोविन्द कहत ऐसे मंगल स्वरूप सदा,
प्रभु कों प्रनाम हम प्रेम तें करत हैं।[१]

ग्रीषम पावस शीतन के दुख अंग संताप सहे बहु भांती।
मार कुठार अपार सहे पुनि काय कटाय धरी शिर काती।
छाति छिदाय लगाइ कें कीलक पट्टि के बंध बंधाय बिघाती।
गोविंद सो तप तें तिय आइ कें ठाढ़ि लगाइ किवार में छाती।[२]

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ४२ छं० ५।

२- अन्योक्ति अरविन्द ह०प्र०सं० १५४ पृ० ६४ छं० १३८।

आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई की भाषा यद्यपि उनके कवित्व के दौर्बल्य का प्रमुख कारण है, तथापि जिन परिस्थितियों में रह कर कवि ने केवल अपने स्वाध्याय से जो अधिकार भाषा पर पाया है वह अपने आपमें उनकी एक बड़ी उपलब्धि है। साथ ही प्रस्तुत अध्ययन में उनकी भाषा की कुछ ऐसी विशेषताओं पर ही विचार किया गया है जो रीतिकालीन कवियों की भाषा में सामान्यत: नहीं मिलती, गोविन्द गिल्ला भाई की भाषा का सर्वांगीण विश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर रीतिकालीन कवियों की भाषा की प्राय: सभी सामान्य विशेषताएं उनकी भाषा में सिद्ध की जा सकती थीं, परन्तु रीतिकवियों की भाषा पर अनेक विद्वान विचार कर चुके हैं, अत: प्रस्तुत अध्ययन में केवल उन्हीं विशेषताओं की ओर इंगित किया गया है जो गोविन्द गिल्ला भाई की भाषा में विशेष रूप से मिलती हैं।

गोविन्द गिल्ला भाई की भाषा के अध्ययन के प्रसंग में यह बात यहां ज्ञातव्य है कि शृंगार-कविता में उनकी भाषा विशेष रूप से शुद्ध है तथा वहां सहज प्रवाह भी है, नैन मंजरी का एक छंद यहां देखा जा सकता है :

नैनपुर रच्छन कों कीनी काम लीक कैधों,
कंजन की कोरन कों रंगी श्याम रंग है।
कैधों रस बागन में क्यारिन के कूलन पै,
कंचुकी रहित श्याम राजत भुजंग है।
कैधों अवरोधि राखे काजर जंजीरन तें,
मैन महाराज जू के लोचन मतंग हैं।
कैधों कवि गोविंद ये योषिता की आंखिन में,
अंजन की रेख लसै सुन्दर सुरंग है।[१]

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ३४० छं० ८७।

प्रस्तुत छंद में रीति कवियों की भाषा की झलक स्पष्टत: देखी जा सकती है। वस्तुत: गोविन्द गिल्ला भाई के लिए रीति कवि ही आदर्श थे, उन्हीं की भाषा के अध्ययन के आधार पर उन्होंने काव्य-रचना की थी। अत: उनकी शृंगार कविता की भाषा का रीति कवियों की भाषा के समान होना अत्यंत स्वाभाविक है। गोविन्द गिल्ला भाई की समूची कविता में शृंगार-कविता न केवल परिमाण में अधिक है वरन् उसमें गुण भी अधिक हैं तथा भाषा की दृष्टि से भी वह अधिक सुन्दर है। आशय यह कि परिमाण में अधिक शृंगार-कविता, अधिक गुणों से युक्त होने के कारण, गोविन्द गिल्ला भाई के समग्र काव्य के अधिकांश को श्रेष्ठ सिद्ध करती है, जो भाषा की दृष्टि से रीतिकालीन कवियों की भाषा के सामान्य गुण दोषों से युक्त होते हुए भी, अहिन्दी भाषी कवि की रचना होने के कारण कुछ विशिष्ट त्रुटियों से युक्त है। आशय यह कि अहिन्दी भाषी क्षेत्र में, अहिन्दी भाषी कवि द्वारा, किसी व्यवस्थित शिक्षा के अभाव में, भाषा का अधिकांश में शुद्ध एवं प्रवाहयुक्त प्रयोग अपने आप में एक महती उपलब्धि है, जिसका मूल्य प्रारम्भ की कुछ रचनाओं में हुई त्रुटियों के कारण किसी प्रकार कम नहीं होता। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई अपने युग के अनुरूप हिन्दी भाषा, और उसकी कुछ बोलियों तथा उसके व्याकरण आदि के विषय में जागरूक थे। परन्तु उन्होंने अपने काव्यादर्श और काव्य विषय आदि में रीतिकालीन कवियों का अनुसरण किया था, उसी प्रकार अपने काव्य की भाषा के प्रयोग में भी उन्होंने उन्हीं कवियों की भाषा का अनुकरण किया था। रीति कवियों की भाषा अपने आप में पर्याप्त मिश्रित हो चुकी थी, और गोविन्द गिल्ला भाई की भाषा उनकी मातृ भाषा गुजराती के प्रभाव के कारण और भी अधिक मिश्रित हो गयी है। परन्तु इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में वे सभी गुण मिलते हैं जो रीति कवियों की भाषा में सामान्यत: पाये जाते हैं।

शैली

अंग्रेजी शब्द 'स्टाइल' के पर्यायवाची शब्द के रूप में हिन्दी में शैली शब्द का प्रयोग होता है, जिसकी विशेष व्याख्या पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा ही हुई है।[१] भारतीय समीक्षा शास्त्र में शैली से मिलता जुलता शब्द 'रीति' है जिसकी विशेष व्याख्या आचार्य वामन द्वारा काव्यालंकार सूत्र में प्राप्त होती है।[२] ये सभी व्याख्याएं शैली को एक स्पृहणीय गुण ही सिद्ध करती हैं। परन्तु प्रस्तुत अध्ययन में शैली शब्द को इस अर्थ में स्वीकृत नहीं किया गया है, वरन् उसे काव्य-व्यक्तित्व की उन सामूहिक विशेषताओं के नाम के अर्थ में स्वीकृत किया गया है, जो एक कवि के समूचे काव्य को अन्य सभी कवियों के काव्य से भिन्न सिद्ध करती हैं। आशय यह कि सभी कवियों का काव्य काव्य होते हुए भी एक सा नहीं होता, प्रत्येक कवि के काव्य में कुछ ऐसी विशेषताएं हों ही, जो उसके काव्य को अन्य कवियों के काव्यों से भिन्न सिद्ध करें, ऐसा नहीं कहा जा सकता। परन्तु कुछ विशिष्ट कवि ऐसे अवश्य होते हैं जिनका काव्य अपनी कुछ गुणमूलक या दोषमूलक विशेषताओं के कारण अन्य कवियों के काव्य से भिन्न सिद्ध होता है। आशय यह कि संप्रति शैली शब्द, किसी विशिष्ट कवि के काव्य की उन गुण दोष मूलक विशेषताओं के सामूहिक अर्थ में प्रयुक्त किया जा रहा है, जो किसी अन्य कवि के काव्य में उसी रूप और अनुपात में न मिलती हों और उस कवि के काव्य को एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करती हों/अर्थात् शैली किसी विशिष्ट कवि के काव्य-व्यक्तित्व की उन भिन्न विधायक तत्वों का नाम है जिनके कारण उसका काव्य अपने आप में एक इकाई बन जाता है।

इस दृष्टि से विचार करने पर गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य में ऐसी कोई गुणमूलक विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती जिसे उनके ही काव्य-व्यक्तित्व की विशेषता कहा जा सके। काव्य-विषय या रस, छंद, अलंकार आदि की

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७७३।

२- वही।

दृष्टियों से विचार करते समय यह स्पष्ट किया जा चुका है कि गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य की सामान्यत: विशेषताएं वे ही हैं, जो रीति कवियों के काव्य की सामान्यताएं हैं। आशय यह कि उक्त सभी दृष्टियों से गोविन्द गिल्ला भाई का काव्य व्यक्तित्व-शून्य है। परन्तु एक दो दोषमूलक ऐसी विशेषताएं इनके काव्य में अवश्य मिलती हैं तथा इस प्रकार मिलती हैं कि उन्हें इनके काव्य व्यक्तित्व की भिन्न विधायक विशेषताएं अवश्य कहा जा सकता है तथा जिन्हें सामूहिक रूप से गोविन्द गिल्ला भाई की शैली कहा जा सकता है।

गोविन्द गिल्ला भाई के समूचे काव्य में समान रूप से व्याप्त जो विशेषता सर्व प्रथम पाठक का ध्यान आकृष्ट करती है, वह है इनकी पुनरुक्ति प्रवृत्ति। यह पुनरुक्ति प्रवृत्ति केवल इनके किसी एक छंद में किन्हीं शब्दों की पुनरुक्ति तक ही सीमित नहीं है यह इनकी अभिव्यंजना शैली की एक व्यापक विशेषता है जो शब्दों की पुनरुक्ति, पादांशों की पुनरुक्ति, पादों की पुनरुक्ति, अप्रस्तुतों की पुनरुक्ति, भाव और विचारों की पुनरुक्ति आदि कई रूपों में प्राप्त होती है।

एक ही छंद में आवश्यक या केवल पादपूर्त्यर्थ किसी एक शब्द की पुनरुक्ति इनकी प्रारंभिक रचनाओं में विशेष रूप से देखने को मिलती है। उदाहरणार्थ परब्रह्म पच्चीसी के क्रमश: १०, ११ और १२ वे छंद में "जाते" शब्द १८ बार आता है, तथा छंद संख्या १३, १४ और १५ में 'जाके' शब्द १६ बार आता है[१]। इसी प्रकार री, अरी, जु, नही, और, सर्व, पुनि, अति, महा, अमित आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जो इनकी किसी भी रचना में पुन: पुन: प्रयुक्त देखे जा सकते हैं/परन्तु यह प्रवृत्ति परवर्ती रचनाओं में इतनी नहीं है जितनी प्रारंभिक रचनाओं में है, परवर्ती रचनाओं में पुनि 'अति' आदि का ही विशेष प्रयोग मिलता है[२]।

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ३५, ३६।

२- तुलनीय है : पावस पयोनिधि ह०प्र०सं० १६०, पृ० ४, ६ ६ आदि।

इस प्रकार से एक ही शब्द का पुन: पुन: प्रयोग रचना के सौन्दर्य को विकृत कर देता है। इसीलिए आचार्यों ने पुनरुक्ति को दोष माना है। गोविन्द गिल्ला भाई ने पादपूर्ति के लिए उक्त शब्दों में से किसी का भी चाहे जहां प्रयोग कर दिया है, कहीं कहीं यह प्रयोग अत्यन्त अनुचित लगता है। उदाहरणार्थ ब्रजभाषा में 'जु' शब्द का प्रयोग अनेक कवियों ने किया है, परन्तु यह शब्द सदैव किसी प्राणिवाचक संज्ञा के ही साथ आता है। गोविन्द गिल्ला भाई ने इसका प्रयोग, कनक जैसे जड़ पदार्थवाची शब्द के साथ भी कर दिया है[1]। इसी प्रकार री, अरी का प्रयोग केवल स्त्रीलिंग शब्दों के साथ ही होता है परन्तु इसका प्रयोग पुलिंग शब्दों के साथ भी उन्होंने किया है[2]। वस्तुत: गोविन्द गिल्ला भाई ने इन शब्दों का प्रयोग केवल पादपूर्ति के लिए किया है जबकि भाषा में ये शब्द विशिष्ट अर्थों में ही प्रयुक्त होते हैं, अत: इन शब्दों की पुनरुक्ति तथा इनका अनुचित प्रयोग खलता है। परन्तु यह गोविन्द गिल्ला भाई की अभिव्यंजना शैली की एक ऐसी विशेषता है जो अन्य किसी कवि में इसी रूप में नहीं मिलती।

शब्दों की पुनरुक्ति के समान ही अनेक पादों और पादांशों की पुनरुक्ति भी गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं में मिलती है, जिन्हें छंदों के विश्लेषण के आधार पर छांटा जा सकता है। श्रीपत अपार, विमल विभात, परमा पवित्र, विशाल वेश, विलसे विशाल, नेक निरधार आदि ऐसे ही पादांश हैं जो अनेक छंदों में समान रूप से मिलते हैं, और जिन्हें अति प्रयुक्त पादांश कहा जा सकता है। इसी प्रकार कुछ पादांश ऐसे भी हैं जो किसी विशिष्ट विषय या अलंकार विशेष के साथ ऐसे संबद्ध हैं कि जहां वह विषय या अलंकार मिलता है उनसे संबद्ध पादांश भी वहीं किसी न किसी रूप में मिल जाता है। इस दृष्टि से गोविन्द ग्रंथमाला के मंगलाचरण के निम्नलिखित छंद देखे जा सकते हैं : गोविन्द ग्रंथमाला ; पृ० ३ छं० २, पृ० ४ छं० २, ७ छं० १ से ८ और १ से ३ पृ० ११, १२ छं० १, २, ३ आदि।

१- तुलनीय है : गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २५१ छं० ५८।

२- ,, वही, पृ० ३० छं० २१, २२, २३ और पृ० ११ छं० १३, १४।

मंगलाचरण के छंदों में भाव और विचारों की पुनरुक्ति तो चरम सीमा पर है। परिणाम स्वरूप एक देव की स्तुति का छंद थोड़े से परिवर्तन के आधार पर दूसरे देव की स्तुति का छंद बन सकता है।[1] इसी प्रकार शृंगार विषयक छंदों में "ऐसे अनुवाद - करि कोविद अनेक भांति, भामिनी को उपमा उचारे हैं, गोविंद पै मेरे जान - - - - स्वकीय कल्पना" जैसी उक्ति पुन: पुन: मिलती है।[2] नायिका आदि के रूप-चित्रण के प्रसंग में तथा प्रकृति वर्णन के प्रसंग में एक ही अप्रस्तुत विभिन्न अलंकारों में मिश्र प्रयुक्त मिलता है, जिसकी चर्चा अलंकार-प्रयोग के विवेचन के समय की जा चुकी है। आशय यह कि शब्द से लेकर भाव और विचार तक की विविध प्रकार की पुनरुक्ति गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य में दृष्टिगोचर होती है, जिन्हें इनके काव्य की ऐसी विशेषता कहा जा सकता है, जो अन्य किसी कवि के काव्य में इस प्रकार से प्राप्त नहीं होती। गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य की उक्त विशेषता को उनके काव्य का कोई गुण नहीं कहा जा सकता/, परन्तु वह उनके काव्य की स्वकीय विशेषता या भिन्न-विधायक-तत्त्व अवश्य मानी जा सकती है।

गोविन्द गिल्ला भाई की शैलीगत विशेषता के अतिरिक्त अलंकृत अभिव्यंजना भी उनकी शैली की एक प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ से ही कवि का अलंकृत काव्य रचना की ओर विशेष रुझान था, परिणाम स्वरूप आगे चल कर अलंकृत अभिव्यंजना उनकी शैली की ऐसी विशेषता बन जाती है कि कदाचित ही कोई छंद मिले जिसमें किसी न किसी अलंकार का आग्रह पूर्वक प्रयोग न किया गया हो। शुद्ध वैचारिक रचनाओं में जहां कवि ने विवेक, नीति आदि के विषयों पर छंद लिखे हैं तथा जहां अप्रस्तुत योजना के लिए अवकाश बहुत नहीं हो सकता, वहां भी कवि ने शब्दालंकारों या दृष्टान्त विनोक्ति, सहोक्ति,

---

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ३ छं० १, पृ० ४ छं० २, ३, पृ० ७ छं० १, २,३, पृ०१२, छं० १, २, ३।

२- वही, पृ० १४६, छं०६ पृ० १५१ छं० १४, पृ० १५३ छं० २०, पृ० १५४ छं० २२,२३ आदि।

प्रमाण आदि जैसे अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। इस प्रकार से सायास आग्रह पूर्वक अलंकार प्रयोग के कारण कहीं कहीं रचना केवल शब्दों का खिलवाड़ बन गयी है। परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई की शैली की यह विशेषता है, और सर्वत्र मिलती है। शब्दों के खिलवाड़ का एक उदाहरण यहां दिया जा रहा है :

भगवा न धारे और भगवान नांहि भजे,
भगवान नार देख मोह में परत हो
भगत न भये और भगतन चित्त चाहि,
भगत भजन ही तें भगलें अरत हो।
भगतातें सर्व घटि भग भगजात तोहू,
भगवान होन उर भगही करत हो।
भग के भगत ह्वै कैं भगकरो सुभग को,
गोविंद सोपाओ कैसें शोच ना धरत हो।[1]

इस प्रकार के और भी अनेक छंद प्रबोध पच्चीसी नामक रचना में देखे जा सकते हैं। परन्तु शृंगार विषयक रचनाओं में शब्दालंकारों का ऐसा प्रयोग नहीं मिलता, क्योंकि वहां कवि अर्थालंकारों का खुल कर प्रयोग कर सका है। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई अपने प्रत्येक छंद में किसी न किसी अलंकार का प्रयोग करना ही चाहते थे। जहां तक अर्थालंकारों का प्रयोग करने का अवकाश मिला है कवि ने उनका प्रयोग किया है। परन्तु जहां अर्थालंकार का प्रयोग नहीं किया जा सकता है, ऐसे स्थलों पर कवि ने शब्दालंकारों का प्रयोग किया है। आशय यह कि अलंकृत-अभिव्यंजना या अलंकार-प्रयोग गोविन्द गिल्ला भाई की शैली की प्रमुख विशेषता है।

गोविन्द गिल्ला भाई की शैली की उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त अन्य जो विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं, वे सामान्यत: सभी रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में देखी जा सकती हैं। उदाहरणार्थ कोमलावृत्ति का प्रमुख प्रयोग, माधुर्य एवं प्रसाद गुण की प्रधानता आदि। क्योंकि गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाएं अधिकांश में शृंगार - रस-परक हैं, शान्त और हास्य रस के कुछ उदाहरण इनकी

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० ३६७ छं० २२।

रचनाओं में मिलते हैं, जिनमें रीतिकवियों के समान गोविन्द गिल्ला भाई ने उक्त वृत्ति एवं गुणों का प्रयोग ही अपनी रचनाओं में किया है । परन्तु ये सभी विशेषताएं ऐसी हैं जो अन्य रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में भी सामान्यत: प्राप्त होती हैं। अत: उन्हें गोविन्द गिल्ला भाई की शैली की ऐसी विशेषता नहीं कहा जा सकता जिनके कारण उनकी शैली अन्य कवियों की शैली से भिन्न कही जा सके । इसीलिए यहां उनके विषय में विशेष विचार करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता ।

उपसंहार

गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य के स्वरूपात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकालीन कवियों के समान मूलत: वे मुक्तककार कवि हैं, जिन्होंने रीति कवियों के प्रिय छंद कवित्त सवैया का ही प्रधान रूप से प्रयोग किया है । गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा से संबद्ध होने के कारण उन्होंने और भी अनेक छंदों का प्रयोग किया है। परन्तु उनकी व्याप्ति कवित्त सवैया की तुलना में बहुत ही अधिक सीमित है । गोविन्द गिल्ला भाई ने रीति परम्परा में प्रचलित प्राय: सभी अलंकारों का प्रयोग किया है । परन्तु कष्ट-साध्य क्लिष्ट एवं चमत्कारपूर्ण अलंकार इन्हें विशेष रूप से प्रिय थे, जिनका आंशिक सफलता के साथ इन्होंने खूब प्रयोग किया है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई का कवित्व अपनी विशिष्ट भौगोलिक, और भाषायी परिस्थिति के कारण हिन्दी के हिन्दी भाषी कवियों के समान विकसित नहीं हो सका, साथ ही उनमें ऐसी सृजनात्मक प्रतिभा भी नहीं थी, जिसके कारण उन्हें हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवि के रूप में स्वीकृत किया जा सके । हां, रीतिकाल के अनेक रीतिबद्ध सामान्य कवियों के समान गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व भी विशेष महत्व के है परन्तु अहिन्दी भाषी कवि होने के कारण उनके कवित्व का अधिक महत्व है । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व का विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व न होते हुए भी राष्ट्रीय दृष्टि से उसका विशेष महत्व है और इसीलिए उसका आज विशेष मूल्य है ।